स्वामी अरूपानन्दकृता

ब्रह्मगायत्री

देवर्षि नारद और ऋषियों के मध्य संवाद के द्वारा
भगवती गायत्री के पुण्य चरित्र का विशद वर्णन

सम्पादक एवं टीकाकार
डॉ. सुधांशु कुमार षडङ्गी

स्वामी अरूपानन्दकृता

ब्रह्मगायत्री

देवर्षि नारद और ऋर्षियों के मध्य संवाद के द्वारा
भगवती गायत्री के पुण्य चरित्र का विशद वर्णन

सम्पादक एवं टीकाकार
डॉ. सुधांशु कुमार षडङ्गी

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
520

डॉ० स्वामी अरूपानन्दकृता

ब्रह्मगायत्री

भाषाटीकासहिता

सम्पादकः
डॉ० सुधांशु कुमार षडङ्गी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© **सर्वाधिकार सुरक्षित।** इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे- इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

ब्रह्मगायत्री

ISBN : 978-93-80326-94-8

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 2012
₹ 250

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

प्रस्तावना

।। ॐ श्रीगुरुदेवश्रीचरणे शरणम् ।।

अरूपं रूपराजितं शून्याश्रमे विराजितम्।
ज्ञानकल्पतरुं वन्दे गुरुमरूपरूपिणम्।।

तनोति तन्यते इति वा, तन् + कर्त्रादौ यथायथं ष्ट्रन्—इस प्रकार 'तन्त्र' पद निष्पन्न होता है। इस तन्त्र का मूलस्रोत वेद ही है। ऋग्वेद में शक्तिविषयिणी सूक्त में प्रतिपादित शक्ति का साधन ही तन्त्र है। क्योंकि वैदिककाल से ही साधना की दो धाराएँ प्रवाहित होती चली आ रही हैं। जैसे—वैदिक धारा और तान्त्रिक धारा। कहा भी गया है कि—

श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी चेति।

(मनु, २/१)

तान्त्रिक साधना-सोपान में शक्ति की प्रमुखता पहले से ही स्वीकृत है। इस प्रसङ्ग पर आगमकोष में कहा गया है कि—

In accordance with this early dichotomy, the tantric cults aligned themselves either to Devi as the giver of life, substainer of the worlds and bringer of happiness for all beings, or to Kaali as the power of killing the enemies, subjugating the wicked, spreading distress and disaster and accomplishing personal ends.

(Agamkosha, Vol. V, p-13)

ऋग्वेद में यह शक्ति सरस्वती, नदी, उषा, अदिति आदि के रूप से वर्णित है। यह शक्ति सर्वशक्तिमान्, अनेक ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली, वाणी—परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी आदि में स्फुट है। यह शक्ति ही गायत्री, सावित्री, दुर्गा, सुभगा, राधा, अम्बा, सुन्दरी आदि नामों से प्रसिद्ध है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म ही तन्त्र के द्वारा आदि शक्ति कहा गया है। यह शक्ति ही सृष्टि, स्थिति और विलय का सम्पादन करने वाली एवं सबका उत्स है। जैसा कि कहा गया है—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्मि
अहमिन्द्राग्नी अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।

(ऋग्वेद, १०/१२५/१)

इस शक्ति की ही साधना तान्त्रिक साधना कही जाती है तथा तन्त्र का यह प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है, क्योंकि तन्त्र अखण्ड अभेद को स्वीकार करता है। यहाँ पर शक्ति और

शक्तिमान् में भेद कथमपि ग्रहणीय नहीं होता है। शक्ति के विषय में श्रीविज्ञानभैरव ग्रन्थ में कहा गया है कि—

शकनं शक्तिः-सामर्थ्यं विश्वनिर्माणादिकारि भैरवस्वरूपमेव।
(विज्ञानभैरव, १)

शक्ति के यथार्थस्वरूप की अनुभूति ही प्राणि को जीव से शिव बना देती है। शक्ति-भूमिका पर आरोहण शिवभाव में प्रवेश कहलाता है। यह शक्ति शिवमुखा है। यथा—

शक्त्यवस्थाप्रविष्टस्य निर्विभागेन भावना।
तदासौ शिवरूपी स्यात् शैवीमुखमिहोच्यते।।

यहाँ पर चैतन्यस्वरूपक शक्तिमान् और उसकी शक्ति एक ही है। यह चैतन्यात्मा ही विश्व का स्वरूप है। चैतन्यरूपा शक्ति चिद्घन शिव की चितिशक्ति है और शिव से अभिन्न है। वह्नि और उसकी दाहिका शक्ति के समान ये दोनों परस्पर अभिन्न हैं। इसके विषय में कहा भी गया है—

न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिः शिववर्जिता।
उभयोरस्ति तादात्म्यं वह्निदाहकयोरिव।।

शिव एक है और उसकी शक्ति भी एक है। परन्तु यह शक्ति विभिन्न स्वरूपों में अपने आपको प्रकाशित करती हुई स्वयं नाना वैचित्र्यमय अनन्तरूपात्मक विश्व बन जाती है। इसके स्पष्टीकरण में स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है कि—

शिवस्यैका महाशक्तिः शिवश्चैको ह्यनादिमान्।
सा शक्तिर्भिद्यते देवि! भेदैरानन्त्यसम्भवैः।।
(स्वच्छन्दतन्त्र, ११/२७२)

शक्ति और शक्तिमान् में अभेद होने से चैतन्य की यह महाशक्ति स्वयं शिव है और जीव भी है। यह शक्ति ही स्फुरत्ता है। समस्त प्रपञ्च को सत्ता प्रदान करती हुई देश, काल और आकार को मूर्त्त बनाती है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (१/५/१४) में कहा गया है कि—

सा स्फुरत्ता महासत्ता, खपुष्प ...।

मन्त्र विचार

शाक्तोपाय में मन्त्र की महत्ता स्वीकृत है, क्योंकि मन्त्र शुद्ध संविद्रूप एवं मायिक उपरागों से रहित होकर आराधक के चित्त के साथ चिदाकाश में विलीन हो जाता है। यह मन्त्र शिवस्वरूपक है। प्रमुख रूप से मन्त्र के दो प्रकार होते है—भोगरूप और मोक्षरूप। इनमें से सांसारिक भोगों के रूप में फल प्रदान करने वाले मन्त्र भोगरूप कहलाते हैं। जैसे—मारण, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन तथा वशीकरण आदि आभिचारिक, रोग-

निवारक तथा सांसारिक भोगेच्छा के लिए प्रयुक्त मन्त्र; तथा जो मन्त्र जीव के शिवत्व की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त होता है, उसे मोक्षरूप मन्त्र कहा जाता है। यह मन्त्र मायीय उपराग, दूषण तथा इहलौकिक फल की आकाङ्क्षा आदि से शून्य होने से निरञ्जन मन्त्र कहलाता है। यह मन्त्र अनाहत नाद की स्थूल अभिव्यक्ति है। इसीलिए इन्हें परममन्त्र कहा जाता है। तन्त्रशास्त्र में इन मन्त्रों के जप को शब्दब्रह्मस्वरूपक नाद कहा गया है। जैसे—

भूयो भूयः परे भावना भाव्यते हि या।
जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जपः ईदृशः।।

वस्तुतः मन्त्र वर्णात्मक नहीं है; अपितु पराशक्ति की नादात्मक अभिव्यक्ति हैं। अतः मन्त्र में प्रयुक्त वर्ण स्वयं शिवात्मक होते हैं। प्रायशः वैदिक मान्यता मे प्रणव को मूलमन्त्र माना जाता है। इस प्रणव के द्वादश अवयवों के बारे में नेत्रतन्त्र में इस प्रकार कहा गया है—

अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुरेव च।
अर्धचन्द्रो निरोधी च नादो नादान्त एव च।।
कौण्डली व्यापिनी शक्तिः समनाश्चेति सामया।
निष्कलं चाध्यात्मिकञ्च शक्तिश्चैव तथोन्मना।।

ज्ञानशक्ति ही मन्त्रयोनि है। यह ज्ञानशक्ति ही मन्त्रों के अवयवभूतवर्णों की स्वात्मस्वरूप है। अतः इनको मातृका कहा जाता है। जैसे—

ज्ञानशक्तिः परा सूक्ष्मा मातृकां तां विदुर्बुधा।
सा योनिः सर्वमन्त्राणां सर्वत्रारणिवत्स्थिता।।

मालिनीतन्त्र मे यह मातृका नादि फान्त कहा गयी है। जैसे—न ऋ ॠ ऌ ॡ थ च ध ई ण उ ऊ ब क ख ग घ ङ इ अ व भ य उ ढ ठ झ ञ ज र ट प छ ल आ स अः ह ष क्ष म श अ त ए ऐ ओ औ द फ । जैसे कि कहा भी है—

न शिखा ऋॠऌॡ च शिरोमाला थ मस्तकम्।
नेत्राणि चध वै नासां ई समुद्रे णुणू श्रुती।।
बकवर्गइआ वक्त्रदन्तजिह्वासु वाचि च।
वभयाः कण्ठदक्षादिस्कन्धयोभुजयोर्डढौ।।
ठो हस्तयोर्झञौ शाखा ञटौ शूलकपालके।
प हचछलौ स्तनौ क्षीरमा स जीवो विसर्गयुक्।।
तत्परः कथितः प्राणः षक्षावुदरनाभिगौ।
मशंताः कटिगुह्योरु युग्मगा जानुनी तथा।।
एऐकारौ तथा जङ्घे तत्परौ चरणौ दफौ।

(मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, ३/३७-४१)

हठयोगप्रदीपिका में नाद को शक्ति कहा गया है। जैसे—**यत्किञ्चिन्नादरूपेण श्रूयते, शक्तिरेव सा** (हठयोगप्रदीपिका, ४/१०२)। मन्त्रात्मक शक्ति के इस नादस्वरूप के कारण साधक के पाप क्षीण हो जाते है तथा उसके चित्त एवं प्राण का निरञ्जन में विलय हो जाता है। यह मन्त्र ही परमेश्वर के साथ तादात्म्य भाव को प्राप्त करते हुए विमर्शन करता है। अत: परमेश्वर का विमर्शरूप सम्वेदन ही मन्त्र है। जैसे कि कहा भी है—

अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपमनेनेति कृत्वा मन्त्र:।

(शिवसूत्र, १/४)

शिवसूत्र के अनुसार वर्णसमुदाय की विशिष्ट सङ्घटनामात्र ही मन्त्र नहीं है, अपितु तत्तत् देवता के विमर्श के कारण प्राप्त सामरस्ययुक्त आराधक का चित्त ही मन्त्र है। जब मन्त्र मे परमेश्वर शिव के समस्त सर्वज्ञत्वादि गुण अथवा शक्तियाँ समाविष्ट हो जाती हैं तब मन्त्र आत्मबल को प्राप्त करते हुए साधक को साध्य की सिद्धि कराता है।

मननात्मक और त्राणात्मक—ये मन्त्र के दो प्रमुख अभिधान माने जाते हैं। क्योंकि शिवसूत्रविमर्शिनी में कहा गया है कि—**परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता भेदमयसंसार-प्रशमनात्मकत्राणधर्मता चास्य निरूप्यते।**

अत: योगिनीहृदय में कहा गया है कि—

मननात्त्रायन्ते साधकमिति मन्त्राश्चिन्मरीचय:।

इसमे पराशक्ति को भी मन्त्र कहा गया है—

ज्ञातृज्ञानमयाकारमननान्मन्त्ररूपिणी ।
तेषां समष्टिरूपेण पराशक्तिस्तु मातृका।।

मन्त्र के दो स्वरूपों की कल्पना की जाती है। जैसे—आभ्यन्तर स्वरूप और बाह्य स्वरूप। इनमें से वर्णों की संख्या, मात्रा, उच्चारण, स्थान, रूप, स्थितियाँ, आकाशादि मन्त्र के आभ्यन्तर स्वरूप हैं। ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक, विनियोग, न्यास, ध्यान आदि मन्त्र के बाह्य स्वरूप होते हैं। मन्त्र में पाँच प्रमुख तत्त्वों का विचार किया जाता है। जैसे—देवतत्त्व, प्राणतत्त्व, बिन्दुतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, शक्तितत्त्व और योगिनीतत्त्व। मन्त्र के इन पाँच स्थानों का भी वर्णन प्राप्त होता है। जैसे—सकल, निष्कल, सूक्ष्म, सकलनिष्कल, कलाभिन्न और कलातीत।

मन्त्र देवशक्ति से युक्त होता है। जैसे श्रीविद्या में वाग्भवकूट, कामराजकूट तथा शक्तिकूट आदि का युक्त होना है।

वाग्भवकूट जैसे—क ए ई ल ह्रीं ।
कामराजकूट जैसे—ह स क ह ल ह्रीं ।
शक्तिकूट जैसे—स क ल ह्रीं ।

इसके विस्तार में प्रथमकूट में मूलाधार से आरब्ध प्रलयकालीन अग्नि के समान क ए ई ल ह्रीं। द्वितीयकूट में अनाहत चक्र से आगे कोटिसूर्य के समान ह स क ह ल ह्रीं एवं तृतीयकूट में आज्ञाचक्र से आरब्ध ललाटचक्र के मध्य कोटिचन्द्र के समान स क ल ह्रीं।

हं सः मन्त्र

हं सः मन्त्र को अजपा गायत्री कहा जाता है। यह दो वर्णों का समुदय है। जैसे हम् और सः। हृदयाकाश में प्राण संवित् के प्रवेश के कारण ही जीवदशा प्राप्त होती है। प्राणशक्ति इडा और पिङ्गला नाडी में दो वलयों से घिरी हुई रहती है। इन दोनों नाडियों के मध्य सुषुम्ना नामक मध्यनाडी रहती है। जिस समय प्राण हृदयाकाश से ऊपर की ओर चढ़ता है तब 'हम्' वर्ण की उत्पत्ति होती है और जब वह द्वादशान्त से नीचे उतरकर आता है तब उसकी उस अपान दशा में 'सः' वर्ण उत्पन्न होता है। इन दोनों वर्णों के उच्चारण से ही जीव में जीवितत्व का बोधन होता है। इस मन्त्र का जप जीव ही करता है। कहा गया है कि—

सकारेण बहिर्याति हकारेण विशेत् पुनः।
हंस-हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति नित्यशः।।
षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
जपो देव्याः समुद्दिष्टः प्राणस्यान्ते सुदुर्लभः।।

(विज्ञानभैरव, १५३-१५४)

हृदयाकाश में रहने वाली यह संवित् 'ह' और 'स' ही धर्म और अधर्म, दीर्घ और ह्रस्व, दिन और रात्रि, अग्नि और सोम—इन सब को उत्पन्न करती है। यह ही परादेवी गायत्री है। यह ही चिदाकाश को प्रकाशित करती है, सदा बोधागमन में बिहार करती रहती है और साथ ही प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण रूप से व्यवहार का सम्पादन करती है। अपरा अवस्था में यद्यपि वाच्य हकार और सकार का उच्चारण स्पष्ट होता है, तथापि जब परादेवी इनको अपने में समेटे हुए अपने बाह्य स्वरूप का संवरण करती है, तब हकार के मस्तक पर स्थित बिन्दुरूप अनुस्वार का केवल बिन्दुरूप में जप नहीं किया जा सकता। इसीलिए इस हंस मन्त्र को अजपा कहा गया है। इसी तरह से यह प्राणशक्ति जब बाहर निकलती है, तब सकार के आगे विसर्गरूप में स्थित दो बिन्दुओं का बिना अकार के उच्चारण नहीं हो सकता; इसीलिये हं सः इस मन्त्र की अजपा गायत्री नाम से प्रसिद्धि है। यद्यपि हं सः मन्त्र का उच्चारण जीवावस्था में होता है और इस समय पूर्णाहन्ता का बोधन नहीं होता है, तथापि यह कोई दोष नहीं है। कहा गया है—

यदि निजहृदयोल्लासं निर्णेतुं नित्यनिष्कलनिच्छा।
मध्यत्रुटितस्त्रुटिव्याऽस्तष्टतयोः सोमसूर्ययोस्तर्हि।।

तन्त्रालोकविवेक में जयरथ ने सकार और हकार के उच्चारण से उत्पन्न जप को सहज और स्वाभाविक माना है। जैसे कि—

सहौ क्षपादिनामानावधरोत्तरचारिणौ।
परस्परद्वेषरतौ सत्तौ नागहुडोपमौ।।
कस्तौ रोधयितुं शक्तो वीर्यमुक्त्वाऽस्वरं महत्।

(तन्त्रालोकविवेक, ३/१७०)

प्रस्तुत पुस्तक इसी आदिशक्ति पराम्बा का स्वरूप भगवती गायत्रीजी का पुण्य विषय है। परमशिव की विमर्शशक्ति के ज्ञान के लिए संसार में चौहद विद्यायें कही गई हैं। जैसे—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, न्याय, मीमांसा, पुराण तथा धर्मशास्त्र। इन चौदह विद्याओं में सारभूत चार वेद ही हैं और वेदों में प्रतिपाद्य गायत्री सारभूता है। इस प्रकार भगवती गायत्री चौदह विद्याओं में श्रेष्ठ है। जैसे कि आचार्य भास्कर राय ने कहा है—

तज्ज्ञानार्थमुपाया विद्या लोके चतुर्दश प्रोक्ताः।
तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री।।

(वरिवस्यारहस्य, ६)

यह गायत्री पराशक्ति है। परमेश्वर की स्वरूपप्रकाशिका है। यह विमर्शरूपा है। गायत्रीमन्त्रविवृत्ति में कहा गया है कि—

गायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया प्रणवः पुरुषः स्मृतः।
ताभ्यामुभयसंयोगाज्जगत्सर्वं प्रवर्त्तते।।
चतुर्वेदमयी देवी गायत्री शक्तिरुच्यते।
प्रणवः शिव इत्येवं शिवशक्तिमयं जगत्।।

(गायत्रीमन्त्रविवृत्ति, ३-४)

यह ही शिवकला है। परावाक् के रूप से यही अभिहित है। जैसा कि उत्पलदेव ने भी कहा है—

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदितेति।

यही सरस्वती आदि नामों से भी कीर्त्तिता है। जैसा कि कहा गया है—

ततो वागिति विख्याता शक्तिः शब्दमयी पुरा।
प्रादुरासीज्जगन्माता वेदमाता सरस्वतीति।।

यह समग्र घट, पटादि सृष्टि सब नामरूपात्मक जगत् भगवती गायत्री का विलासमात्र है। यही परा वाग् श्रुति में गायत्री कही गयी है। जैसे—

गायत्री वा इदं सर्वं यदिदं किञ्चेति वाग्वै। गायत्री वाग्वा इदं सर्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयमिति।

और भी—गायत्री शब्द की व्युत्पत्ति से भी भगवती आद्याशक्ति गायत्री की महत्ता सम्यक् स्फुट होती है। जैसे--

१. गायति च त्रायते च सा गायत्रीति—इस व्युत्पत्ति के अनुसार गायत्री वैखरी वाक् के रूप से शब्दात्मक हैं। शब्दवैचित्र्य से संसार की अभिव्यक्ति में हेतु बनती है।

२. ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार गायान् त्रायते या सा गायत्री—इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो गाय अर्थात् प्राणों का रक्षण करती है, वह गायत्री है।

३. बृहदारण्यक में कहा गया है कि—गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायते ततः।

अतः प्राणधारिणी प्राणस्वरूपा शक्ति ही गायत्री है।

गायत्री के स्वरूप

गायत्रीपुरश्चरणपद्धति में गायत्री के स्वरूप के विषय में निम्न प्रकार से कहा गया है—

१. गायत्री का गोत्र—साङ्ख्यायन।

२. गायत्री के वर्ण—बत्तीस।

३. गायत्री के पाद—चार; अन्तिमपाद की गणना न होने से त्रिपदा कही जाती है।

४. गायत्री के अक्षर—चौबीस।

५. गायत्री की कुक्षि—आठ; प्रथम—पूर्व दिशा, द्वितीय—दक्षिण दिशा, तृतीय—पश्चिम दिशा, चतुर्थ—उत्तर दिशा, पञ्चम—ऊर्ध्व दिशा, षष्ठ—अधः दिशा, सप्तम—अन्तरिक्ष दिशा, अष्टम—अवान्तर दिशा।

६. गायत्री के पाद—चार; प्रथम—ऋग्वेद, द्वितीय—यजुर्वेद, तृतीय—सामवेद, चतुर्थ—अथर्ववेद।

७. गायत्री के सिर—सात; १. व्याकरण, २. शिक्षा, ३. कल्प, ४. निरुक्त, ५. ज्योतिष, ६. इतिहास व पुराण, ७. उपनिषद्।

८. गायत्री के रूप—प्रातः (पूर्वसन्ध्या)—गायत्री, मध्याह्न—सावित्री, सायं (पश्चिमा)—सरस्वती।

९. गायत्री की वेशभूषा—गायत्री—रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रा, सावित्री—श्वेतवर्णा, सरस्वती—कृष्णवर्णा।

१०. गायत्री का हृदय—विष्णु।

११. गायत्री की शिखा—रुद्र।

१२. गायत्री का कवच—ब्रह्मादि।

गायत्री मन्त्र

वेदों में गायत्री मन्त्र को तीन पादों में बतलाया गया है। जैसे—

तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

ये तीनों महाव्याहृतियों के साथ मिलकर चतुर्विंशति अक्षरात्मक हो जाते हैं। लोक में जिस गायत्री मन्त्र का प्रचलन है, वह यही चौबीस अक्षरों वाला ही है। जो समस्त तापों का हरण करने वाला तथा सर्वत्र व्यापक है—उसे व्याहृति कहा जाता है। त्रिविध पापों के प्रक्षालन हेतु सात व्याहृतियाँ हैं—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्। इन सप्त व्याहृतियों का सम्बन्ध सात लोकों से है। जैसा कि कहा गया है—

स भूर्भुवः स्वश्च महोजनस्तपः समन्वितं सत्यमिति क्रमेण।

(प्रपञ्चसारतन्त्र)

इनमे से प्रथम तीन व्याहृतियाँ महाव्याहृति कही जाती है। व्याख्याकारों ने इनके स्वरूप के विषय मे भिन्न मत दिये हैं। जैसे—

भूः	**भुवः**	**स्वः**
ऋक्	यजुः	साम
सत्ता	चिन्तन	प्रकाशक
वाणी	मन	प्राण
अग्नि	वायु	आदित्य
पृथिवी	अन्तरिक्ष (पाताल)	स्वर्ग
सत्	चित्	आनन्द
रक्षक	दुःखनाशक	सुखस्वरूप
प्राण	अपान	व्यान
ब्रह्मग्रन्थि	विष्णुग्रन्थि	रुद्रग्रन्थि
मन्त्रदीक्षा	अग्निदीक्षा	ब्रह्मदीक्षा
अन्नमयकोश	प्राणमय एवं मनोमय कोश	विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोश

गायत्री मन्त्र में महाव्याहृति को छोड़कर नौ पद हैं—१. तत्, २. सवितुः, ३. वरेण्यं, ४. भर्गो, ५. देवस्य, ६. धीमहि, ७. धियो, ८. योनः, ९. प्रचोदयात्। अतः यज्ञोपवीत में भी नौ सूत्र होते हैं। इसमें तीन ग्रन्थियाँ दी जाती हैं—ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि। ये तीन ग्रन्थियाँ तीन महाव्याहृतियों का उपलक्षण हैं। आचार्य शङ्कर ने इनको वेद के सारभूत मन्त्रों की संज्ञा दी है। यथा—

अन्वर्थकं मन्त्रमिमन्तु वेदसारं पुनर्वेदविदो वदन्ति।

(प्रपञ्चसारतन्त्र)

गायत्री मन्त्र—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो नः प्रचोदयात्।

गायत्री मन्त्र मे प्रयुक्त प्रणव के दो स्वरूप हैं—सगुण और निर्गुण। आचार्य भास्कर राय के अनुसार यह गायत्री ही पराशक्ति पराम्बा श्रीविद्या है। उन्होंने चतुर्विंशति अक्षरात्मक मन्त्र को बाह्य मानकर इसके तात्त्विक पञ्चदशाक्षरी मन्त्र का उपदेश किया है। यह पञ्चदशाक्षरी मन्त्र है—

क ए इ ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं।

इनके अनुसार चतुर्विंशति अक्षरात्मक मन्त्र पञ्चदशाक्षरी मन्त्र से भिन्न नहीं है, अपितु अभिन्न है। उपर्युक्त पञ्चदशीमन्त्र में तीन कूट हैं। जैसे—

वाग्भवकूट—क ए इ ल ह्रीं।
कामराजकूट—ह स क ह ल ह्रीं।
शक्तिकूट—स क ल ह्रीं।

वाग्भवकूट में १८ वर्ण, कामराजकूट में २२ वर्ण और शक्तिकूट में १८ वर्ण होते हैं। जैसा कि कहा गया है—

प्रथमतृतीयकूटे अष्टादशवर्णात्मके, मध्यमकूटं तु चतुरधिकं, संहत्याष्ट-पञ्चाशद्वर्णात्मिका विद्येति सिद्धम्।। (प्रकाश)

वाग्भवकूट = क् + अ + ए + ई + ल् + अ + ह् + र् + बिन्दु + अर्धचन्द्र + रोधिनी + नाद + नादान्त + शक्ति + व्यापिका + समना + उन्मनी = १८ अवयव। ह्रीं मे १२ अवयव हैं। जैसे—ह् + र् + बिन्दु + अर्धचन्द्र + रोधिनी + नाद + नादान्त + शक्ति + व्यापिका + समना + उन्मनी। इसी विषय पर वरिवस्यारहस्य में कहा गया है—

हृल्लेखायाः स्वरूपं तु व्योमाग्निर्वामलोचना।
बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तयः।।
व्यापिकासमनोन्मन्य इति द्वादशसंहतिः।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।।

(वरिवस्यारहस्य, १२-१३)

इसी प्रकार वाग्भवकूट, कामराजकूट और शक्तिकूट मिलकर ५८ अवयव होते हैं। इनके उच्चारण काल को मात्रा कहा जाता है। जिसमें वाग्भवकूट ११ मात्राओं वाला, कामराजकूट साढ़े ग्यारह मात्राओं वाला और शक्तिकूट को साढ़े आठ मात्राओं वाला कहा गया है। जैसे—

एकादश वाक्कूटे सार्धा एकादशोदिता मध्ये।।

सार्धा अष्टौ शक्तावेकैकलवेनिता मात्राः।
संहत्यैकत्रिंशन्मात्रा मन्त्रे लवत्रयन्यूनाः।।

(वरिवस्यारहस्य, १७-१८)

गायत्री-त्रिपदा के विषय में कौलिकों का मत कुछ भिन्न है। उनके अनुसार वस्तुतः गायत्री में चतुर्थ पाद भी है, जो पर रज आदि आठ वर्णों वाला है। परन्तु यह गोपनीय होने से प्रचारित नहीं है। यह केवल गुरु से ही ग्रहण करने योग्य है। आचार्य भास्कर राय ने इस विषय पर कहा है कि चतुर्थ चरण अस्पष्ट है। जैसे—

चरणत्रयम् 'तत् सवितुः' इत्यादि स्पष्टम्। 'परोरजसे सावदोम्' इति चतुर्थ चरणं त्वस्पष्टमित्यर्थः। (प्रकाश)

गायत्री मन्त्र में इच्छा, ज्ञान और क्रिया—इन तीन शक्तियों का निवास है। जिसके फलस्वरूप इसको जपने वाला समस्त पापों से मुक्त होकर परमशिवतत्त्व के सायुज्य को प्राप्त करता है।

यह पुस्तक योगसिद्ध डॉ० स्वामी अरूपानन्द जी के द्वारा रचित है। पूज्य डॉ० अरूपानन्द जी अद्यतन औत्कलिक वैष्णव परम्परा के ख्यातिलब्ध सिद्ध साधक हैं।

पूज्यपाद जी का जन्म ओडिशा प्रदेश के जगत्सिंहपुर जिला के अन्तर्गत बिरिडि नामक गाँव में प्रख्यात तन्त्रसिद्ध ब्रह्मलीन श्री कृष्णचन्द्र पाणि एवं माता श्रीमती हेमलता पाणि जी से १९६४ ईसवी में हुआ था। बाल्यकाल से ही आप औत्कलिक वैष्णव परम्परा से दीक्षित होकर समाज से कलि-कलुष-निवारण में प्रयत्नरत रहकर समाजसेवा के नये नये आयामों से जनमानस को सर्वदा आनन्दित कर रहे हैं। इस बहुमूल्य समाजसेवा के कारण ही आपको सरकार तथा अन्य अनेक समाजसेवी संगठनों द्वारा अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

पूज्य गुरुदेव जी की ओडिया, हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी में अनेक ख्यतिप्राप्त रचनायें हैं—

ओडिया भाषा में—

१. विश्वभ्रातृत्व ओ श्रीजगन्नाथ
२. कृष्णकथा
३. चैतन्यचन्द्रिका Vol. I-III
४. श्रीक्षेत्रवालि
५. गीताशिक्षामृत
६. बउल
७. अदृश्यर अभिमान
८. कलापाहाड

हिन्दी भाषा में—

१. अभिमान

२. तेरे लिए

३. गीत कान्हा के लिए

संस्कृत भाषा में—

१. अरूपगीता

२. ब्रह्मगायत्री

३. श्री श्री विश्वरूपाकृपाकटाक्षशतकम्

अंग्रेजी भाषा में—

१. Songs for Kanha

२. Sorrow of Cosmos

३. Corals of Time

इसके साथ ही आपके अनेक ओडिया भाषा में सगुण तथा निर्गुणपरक भजन भी प्राप्त होते हैं। सान्द्रमुद्रिका में ये सब प्राप्त हो रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में देवर्षि नारद और ऋषियों के मध्य संवाद के द्वारा भगवती के चरित्र का वर्णन किया गया है। प्रथम अध्याय में २२ श्लोक हैं। इस अध्याय में भगवती गायत्री जी के आविर्भाव और स्थिति का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में ५० श्लोक हैं। इस अध्याय में देवी गायत्री से देवताओं को अभीष्ट वरों की प्राप्ति के विषय में वर्णन है। तृतीय अध्याय में ३८ श्लोक है। इस अध्याय में गायत्री जी की शक्ति के विषय में वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में ९० श्लोक हैं। इस अध्याय में ब्रह्मा जी का गायत्री जी को शाप देना और उस शाप का विमोचन तथा ब्रह्मा और सावित्रीस्वरूपा गायत्री जी के विवाह का वर्णन है। पञ्चम अध्याय में ५७ श्लोक हैं। इस अध्याय में वशिष्ठ और विश्वामित्र जी के द्वारा गायत्री जी को प्रदत्त शाप, उसके विमोचन तथा देवी के धरावतरण का वर्णन है। षष्ठ अध्याय में ४१ श्लोक हैं। इस अध्याय में समाधियोग के विषय में विचार हैं। सप्तम अध्याय में ७२ श्लोक हैं। इस अध्याय में गायत्री जी के मन्त्र का वर्णन किया गया है। अष्टम अध्याय में २८ श्लोक हैं। इस अध्याय में प्रणव का तात्त्विक चिन्तन किया गया है। नवम अध्याय में ३७ श्लोक हैं। इस अध्याय में गायत्री नाम की महिमा बतायी गयी है। दशम अध्याय में २४ श्लोक हैं। इस अध्याय में गायत्री जी की स्तुति की गई है। एकादश अध्याय में ३८ श्लोक हैं। इस अध्याय में गायत्री जी के ब्रह्मविद्यास्वरूप का निर्वचन किया गया है। द्वादश अध्याय में ३१ श्लोक हैं। इस अध्याय में गायत्री जी के पाँच मुखों एवं उन मुखों का महत्त्व बताया गया है। त्रयोदश अध्याय में ३१ श्लोक हैं। इस अध्याय में कुण्डलिनी योग पर विचार किया गया है। चतुर्दश अध्याय में ४१ श्लोक हैं। इस अध्याय में योग के विषय में विचार प्रस्तुत है। पञ्चदश

अध्याय में २८ श्लोक हैं। इस अध्याय में मन्त्र के स्वरूप तथा मन्त्रभेद का विचार किया गया है। षोडश अध्याय में ३२ श्लोक हैं। इस अध्याय में ज्ञानयोग के विषय में बताया गया है। सप्तदश अध्याय में २० श्लोक हैं। इस अध्याय में शान्तिक्रियामार्ग का कथन है। अष्टादश अध्याय में २२ श्लोक हैं। इसमें अपवर्ग का वर्णन है।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक में कुल १८ अध्याय हैं और इन १८ अध्यायों के ७०२ श्लोकों में भगवती गायत्री जी के पुण्य चरित्र का विशद वर्णन हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन पूज्य गुरुदेव के अशीर्वाद के कारण ही सम्पन्न हो पाया है। इसलिए प्रस्तुत पुस्तक का समस्त श्रेय पूज्य जी को ही है। मैं अल्पज्ञ हूँ, इसके सम्पादन में कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं, इसलिए सुधीजन उन दोषों को मेरी अज्ञानता मान कर त्रुटियों को मार्जित करने की कृपा अवश्य करेंगे।

गुरुपूर्णिमा
गुरु आश्रम

गुरुचरणाश्रित
सेवक

विषयसूची

ब्रह्मगायत्र्यष्टकम्	१
ब्रह्मगायत्रीकवचम्	३
ब्रह्मगायत्र्याः अर्गलस्तोत्रम्	४
ब्रह्मगायत्रीकीलकस्तोत्रम्	५
प्रथमोऽध्यायः—गायत्र्याः जन्मस्थितिवर्णनम्	७
द्वितीयोऽध्यायः—देवत्रयाभीष्टपूरणम्	१२
तृतीयोऽध्यायः—गायत्र्याः शक्तिवर्णनम्	२२
चतुर्थोऽध्यायः—देवतावरप्राप्तिः	२६
पंचमोऽध्यायः—शाप-विमोचनम्	४६
षष्ठोऽध्यायः—समाधियोगवर्णनम्	५७
सप्तमोऽध्यायः—मन्त्रवर्णनम्	६४
अष्टमोऽध्यायः—प्रणवतत्त्ववर्णनम्	७८
नवमोऽध्यायः—नाममाहात्म्यवर्णनम्	८३
दशमोऽध्यायः—स्तोत्रवर्णनम्	६०
एकादशोऽध्यायः—ब्रह्मविद्यास्वरूपकथम्	६६
द्वादशोऽध्यायः—पंचमुखमाहात्म्यवर्णनम्	१०३
त्रयोदशोऽध्यायः—कुण्डलिनीयोगकथनम्	१०६
चतुर्द्दशोऽध्यायः—योगकथनम्	११५
पंचदशोऽध्यायः—मन्त्रभेदकथनम्	१२२
षोडशोऽध्यायः—ज्ञानयोगकथनम्	१२७
सप्तदशोऽध्यायः—शान्तिक्रियामार्गकथनम्	१३३
अष्टादशोऽध्यायः—ब्रह्मनिर्वाणयोगकथनम्	१३७
ब्रह्मगायत्र्याः माहात्म्यम्	१४१

।। श्रीः ।।

डॉ० स्वामी अरूपानन्दकृता

ब्रह्मगायत्री

भाषाटीकासहिता

अथ ब्रह्मगायत्र्यष्टकम्

सुकल्याणीं वाणीं सुरमुनिवरैः पूजितपदां
शिवामाद्यां वन्द्यां त्रिभुवनमयीं वेदजननीम्।
परां शक्तिं स्रष्टुः विविधनिधिरूपां गुणमयीं,
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।१ ।।
विशुद्धां सत्त्वस्थामखिलदुरवस्थाप्रशमनीं
निराकारां सारां सुविमलतमोमूर्त्तिमतुलाम्।
जगज्ज्येष्ठां श्रेष्ठामसुरसुरपूज्यां श्रुतिनुतां
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।२ ।।
तपोनिष्ठां भिष्ठां स्वजनमनसन्तापशमनीं
दयामूर्त्तिं स्फूर्त्तिं यतिततिप्रसादैकसुलभाम्।
वरेण्यां पुण्यां तां निखिलभवबन्धापहरिणीं
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।३ ।।
सदाऽराध्यां साध्यां सुमतिमतिविस्तारकरिणीं
विशोकामालोकां हृदयगतमोहान्धहरिणीम्।
परां दिव्यां भव्यामगमभवसिन्ध्वेकतरणीं
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।४ ।।
अजां द्वैतां त्रैतां विविधगुणरूपां सुविमलां
तमोहन्त्रीं यन्त्रीं श्रुतिमधुरनादां रसमयीम्।

महामान्यां धन्यां सततकरुणाशीलविभवां
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।५ ।।
जगद्धात्रीं गात्रीं सकलभवसंहारकरिणीं
सुवीरां धीरां तां सुविमलतमोराशिसरणीम् ।
अनेकामेकां वै त्रिभुवनसदाधिष्ठितपदां
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।६ ।।
प्रबुद्धां बुद्धां तां सुजनजनजाड्यापहरिणीं
हिरण्यां गुण्यां तां सुकविजनगीतां सुनिपुणाम् ।
सुविद्यां निर्विद्याममलगुणगाथां भगवतीं
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।७ ।।
अनन्तां शान्तां यां भजति बुधवृन्दः श्रुतिमयीं
सुगेयां ध्येयां यां स्मरति हृदि नित्यं सुरपतिः ।
सदा भक्त्या शक्त्या प्रणतमतिभिः प्रीतिवशगां
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।।८ ।।
शुचिर्भूत्वा पठेद्यस्तु गायत्र्याश्चाष्टकं शुभम् ।
महाभाग्यं भवेत्तस्य तस्मिन् माता प्रसीदति ।।९ ।।

अथ ब्रह्मगायत्र्याः कवचम्

अस्य श्रीवेदमातागायत्रीस्तोत्रमन्त्रस्य कश्यप ऋषिः, अनुष्टुबादीनि छन्दांसि, परमात्मा देवता, ज्ञानप्रदायकं बीजम्, शरीरपरित्राणी शक्तिः, सर्वक्लेशविनाशकं कीलकम्, महापातकध्वंसमिति कवचम्, सर्वेषां देशवासिनामभीष्टसिद्ध्यर्थं गायत्रीशक्तिवर्णने विनियोगः ।

अथ करन्यासः—

ॐ भूर्भुवः स्वः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ तत् सवितुः तर्जनीभ्यां स्वाहा ।
ॐ वरेण्यं मध्यमाभ्यां वषट् ।
ॐ भर्गो देवस्य अनामिकाभ्यां हुं ।
ॐ धीमहि कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।
ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

अथ अङ्गन्यासः—

ॐ भूर्भुवः स्वः हृदयाय नमः।
ॐ तत् सवितुः शिरसे स्वाहा।
ॐ वरेण्यं शिखायै वषट्।
ॐ भर्गो देवस्य कवचाय हुं।
ॐ धीमहि नेत्राभ्यां वौषट्।
ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्—

चिच्छक्तिं सवितेव कान्ति दधतीं हंसासने संस्थितां,
पंचास्यां परमां च योगनिरतां स्वाहास्वधासंयुताम्।
सर्वज्ञां श्रुतिमातरं सुरुचिरां राजेश्वरीं मोक्षदां,
गायत्रीं सुरकिन्नरादिभि नुतां ध्यायेच्च देवप्रियाम्।।

अथ ब्रह्मगायत्रीकवचम्

कामदेवी रक्षेत् शीर्षं प्रिया रक्षतु लोचने।
सत्या वै पातु पादौ च पाणी पातु शिवा सदा।।१।।
भद्रा तु पातु मे जङ्घौ प्रभावती तु चर्मकम्।
प्रिया तु रसनां रक्षेत् शान्ता रक्षतु नासिकाम्।।२।।
लोमकूपे वसेत् कान्ता अङ्गुष्ठौ पातु शारदा।
सरस्वती रक्षेत् कर्णौ विद्रुमाधरयुग्मकम्।।३।।
दन्तान् रक्षतु सूक्ष्मा वै विशालाक्षि च मूर्द्धनि।
व्यापिन्यन्तस्तु शक्तिं च विमला गण्डयुग्मकम्।।४।।
तमोपहारिणी तावत् रक्षतु पृष्ठभागकम्।
विश्वा तु रक्षेद् गुह्यं मे पादाङ्गुलीश्चतुष्पदा।।५।।
जया तु जघनं पातु पद्मालया च गुल्फकम्।
परा रक्षतु कापालं स्कन्धौ शोभा च रक्षतु।।६।।
अक्षिद्वयं च भद्रा वै दुर्गा भ्रूयुगलं तथा।
मातस्त्वं पाहि मे सर्वमङ्गप्रत्यङ्गमेव च।।७।।

इति ब्रह्मगायत्र्याः कवचम्

अथ ब्रह्मगायत्र्याः अर्गलस्तोत्रम्

अस्य अर्गलस्तोत्रमन्त्रस्य निरञ्जनः ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, श्रीपरमात्मा देवता, अनादिः शक्तिः, ब्रह्मज्ञानज्योतिः कीलकम्, मम सर्वाङ्गरक्षार्थे विनियोगः।

अथ करन्यासः—

ॐ भूर्भुवः स्वः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ तत् सवितुः तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ वरेण्यं मध्यमाभ्यां वषट्।
ॐ भर्गो देवस्य अनामिकाभ्यां हुं।
ॐ धीमहि कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

अथ अङ्गन्यासः—

ॐ भूर्भुवः स्वः हृदयाय नमः।
ॐ तत् सवितुः शिरसे स्वाहा।
ॐ वरेण्यं शिखायै वषट्।
ॐ भर्गो देवस्य कवचाय हुं।
ॐ धीमहि नेत्राभ्यां वौषट्।
ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्—

कुन्देन्दुधवलां सुचारुकमलां कण्ठस्थले मालिकां
विभ्राणां कुसुमाङ्कितां स्ववपुषि शुक्लाम्बरैः शोभिताम्।
ब्रह्मेन्द्रासुरकिन्नराः मुनिगणाः पश्यन्ति यां सर्वदा
तां शक्तिं प्रणमामि वेदजननीं यज्ञप्रियां शान्तिदाम्।।

अथ अर्गलस्तोत्रम्

गुणिभिः पूजिता देवि! अष्टैश्वर्यप्रदायिनि!।
देहि मे शरणं मातस्त्वत् पदे प्रणमाम्यहम्।।१।।
जगत्पूज्यां जगद्वन्द्यां त्रिभुवने च वन्दिताम्।
जगद्भूषां जगद्दक्षां नमामि त्वां सुरेश्वरीम्।।२।।

पुत्रं कन्यां धनं देहि पादयोर्दर्शनं तव।
ममाभीष्टफलं देहि संयाचेऽहमकिंचनः।।३।।
नास्ति मे स्वजनः कश्चिन्नास्ति सम्बलतादृशम्।
केवलं तव मन्त्रं तु सम्बलं च निरन्तरम्।।४।।
बान्धवाः कीलकाः सन्ति पिता नास्ति ममैव तु।
विभ्रामयति मे माता भ्रातरश्च तथैव च।।५।।
त्वमेव मातः सकलं त्वं मे वचोऽम्बिका पुनः।
त्वं मे नित्यं त्वं च सत्यं त्वदन्यो नास्ति वै मम।।६।।
अतस्त्वच्चरणे शिरः न्यस्य विज्ञापयाम्यहम्।
देहि मातः कृपाविन्दून् येन प्राप्स्यामि मोक्षकम्।।७।।

इति ब्रह्मगायत्र्याः अर्गलस्तोत्रम्

अथ ब्रह्मगायत्रीकीलकस्तोत्रम्

अस्य श्रीगायत्रीकीलकस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः, विराट् छन्दः, निरंजनो देवता, आद्या शक्तिः, ब्रह्माक्षरं कीलकम्, सदा सर्वाङ्गरक्षार्थे जपे विनियोगः।

अथ करन्यासः—

ॐ तत् सवितुः ब्रह्मात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ वरेण्यं विष्ण्वात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने मध्यमाभ्यां वषट्।
ॐ धीमहि सत्यात्मने अनामिकाभ्यां हुं।
ॐ धियो यो नः ज्ञानात्मने कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ॐ प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

अथ अङ्गन्यासः—

ॐ तत् सवितुः ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः।
ॐ वरेण्यं विष्ण्वात्मने शिरसे स्वाहा।
ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै वषट्।
ॐ धीमहि सत्यात्मने कवचाय हुं।

ॐ धियो यो नः ज्ञानात्मने नेत्राभ्यां वौषट्।
ॐ प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्:—

स्तुवः स्रुक्कुण्डिकाहस्तां शुद्धनिर्मलरोचषम्।
सर्वतन्त्रमयीं वन्दे गायत्रीं वेदमातरम्।।

अथ कीलकस्तोत्रम्

वन्देऽहं गायत्रीदेवीं सदा मङ्गलकारिणीम्।
सर्वाभीष्टाभिदात्रीं च सर्वज्ञानप्रदायिनीम्।।१।।
अध्यायादध्यायं यावत् केन साकं न कथ्यते।
समाप्तेऽध्याये पाठे तु गायत्रीजलमर्पयेत्।।२।।
न्यासनैवेद्यकं कर्म करणीयं यथाविधि।
मुद्रया पूजिता देवि नूनं लभ्यं प्रसाद्यति।।३।।
सर्वदा गायत्रीं देवीं चिन्तयन् सान्तरं ततः।
गायत्रीमातृवदनं सदैव परिदृश्यते।।४।।
स्थूलसूक्ष्मत्वमाधाय जगत्सर्वं विराजते।
ततस्तस्याः पूजनं च नास्ति संशय एव च।।५।।
द्विधा पाठसमं युक्तं मात्राभग्नं कदापि न।
शिरसश्चंचलं नास्ति केवलं दोष वर्द्धते।।६।।
यथाविधि तु तां देवीमाह्वानं क्रियते तथा।
विधिहीनं पठेद्यस्तु मातुः क्रोधस्य भाजनम्।।७।।
यत्र गच्छ यत्र तिष्ठ यत्रावस्थितो मानवः।
तत्र मातुर्नाम नित्यं जपेन्नूनं हि शङ्कर।।८।।
अन्या दिशः न द्रष्टव्याः पुस्तकमेव केवलम्।
ध्यानं तावद् वेदमातुः मन्त्रं तस्याः निराकुलम्।।९।।
शब्दात् शब्दान्तरं यावत् लालित्यं परिकारयेत्।
पदलालित्यकं श्रेष्ठं तस्मादिदं प्रकथ्यते।।१०।।
धीरस्थिरत्वमाधाय पठनीयं प्रयत्नतः।
पुस्तकमन्यथा देवी क्रुद्धा भवति शङ्करी।।११।।

इति ब्रह्मगायत्र्याः कीलकस्तोत्रम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

(गायत्र्याः जन्मस्थितिवर्णनम्)

ऋषय उचुः

भो देव! त्वं ब्रूहि तावद् गायत्रीविषयं तथा।
कुत्र जाता कुत्र स्थिता शृणुमस्त्वन्मुखात् वयम्।।१।।

कदाचित् सब ऋषियों ने मिलकर महर्षि नारद जी से कहा, हे देव! आप पहले गायत्री जी के विषय में कहो। उस गायत्री ने किस स्थान में जन्म लिया था एवं कहाँ पर रह रही थी। यह आपके मुख से हम लोग सुनना चाहते हैं।

नारद उवाच

शृणुत वै प्रवक्ष्यामि गायत्रीविषयं ततः।
यदा पंचभूताः देवाः नासन् हि भुवनत्रये।।२।।

नारद जी ने कहा कि हे ऋषिगण! गायत्री जी के विषय में मैं कहता हूँ, आप लोग उसे सुनो। जब इन तीनों भुवनों में पंचभूत एवं देवतागण नहीं थे।

प्रकृतिः पुरुषश्चैव नास्ति केवलमेव च।
ब्रह्मरूपेण जगति विद्यतेऽत्रैकविन्दुकम्।।३।।

जब प्रकृति और पुरुष नहीं थे, उस समय इस जगत् में केवल एक विन्दुरूप में ब्रह्म ही विद्यमान था।

गते कियति दिवसे पुरुषरूपधारिणम्।
अद्भुतं जायते तस्मात् विन्दुरूपत्त्वनन्तरम्।।४।।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर उस विन्दुरूपक ब्रह्म से एक अद्भुत जीव उत्पन्न हुआ।

कोटिसूर्यसमं तेजः प्रलये परिशोभितम्।
योगनिद्रोपसुप्तं तु किंचित् कालः गतस्तदा।।५।।

उसके बाद कोटिसंख्यक सूर्य-सदृश अति तेजोमय उस पुरुष का प्रलय के समय में भी शोभायुक्त होकर योगनिद्रा की अवस्था में कुछ समय व्यतीत हो गया था।

ब्रह्मविष्णुसुरगणाः सम्भूतास्त्वात्मशक्तितः।
तैर्देवैश्च सुराः सर्वे सृष्टाः पंचभूतास्तथा।।६।।

इसके बाद उस पुरुष की आत्मशक्ति से ब्रह्मा, विष्णु एवं सुरगण प्रभृतियों का जन्म होकर उन देवों से देवताओं तथा पंचभूतों की उत्पत्ति हुयी।

वनस्पतयो गिरयः समुद्राः सप्तसंख्यकाः।
यक्षरक्षग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि घनाश्च ते।।७।।

उन देवों ने वृक्ष, लता, पर्वत, सात समुद्र, यक्ष, राक्षस, सत्ताईस नक्षत्र एवं अड़तालीस मेघों को उत्पन्न किया था।

चिन्तनात्तस्य देवस्य बृहदग्निः समुद्भूतः।
ततः स सकलं विश्वमाक्रान्तः कृतवान् स्वयम्।।८।।

उस पुरुष के चिन्तन से एक भयङ्कर अग्नि का जन्म हुआ। उसके बाद उस अग्नि ने सम्पूर्ण विश्व को आक्रान्त किया था।

स वह्निः प्रलयं सिन्धुं स्वयंकृतेन तेजसा।
शुष्कीकृतं तदा तस्य निद्रा विभाजिता यदा।।६।।

उसके बाद जब उस अग्नि ने अपने तेजस् के द्वारा प्रलय काल के समुद्र को सुखा दिया था, उस समय उस पुरुष की निद्रा भङ्ग हो गयी थी।

अपश्यन्नायिकामेकां कन्दर्पदर्पनिन्दिताम्।
शुक्लवस्त्रपरीधानां सुकेशीं कम्बुकण्ठिकाम्।।१०।।

निद्रा भङ्ग हो जाने के अनन्तर उस पुरुष ने एक कन्दर्प के रूप को भी उपहसित करती हुई; शुक्ल वस्त्र को धारण करती हुयी, शोभन केश वाली, कम्बुकण्ठ वाली नायिका को देखा था।

पीनस्तनीं सुवदनामपूर्ववाक्यभाषिणीम्।
हेमवर्णां कंजनेत्रां वेदवेदान्तपारगाम्।।११।।

(उसके बाद) उस पुरुष ने उत्तुङ्ग स्तन वाली, शोभन मुख वाली, सुन्दर वाक्यों को कहने वाली, सोने के रूप वाली, पद्मनेत्र वाली, वेद-वेदान्तों में कुशलता को प्राप्त करने वाली नायिका को देखा।

हंसारूढ़ां चतुर्हस्तामक्षमालां च धारिणीम्।
वरदां शुभदां नित्यां कमलैश्च विभूषिताम्।।१२।।

जो कि हंसवाहना, चतुःहस्ता, अक्षमाला को धारण करने वाली, वर को देने वाली, नित्य और कमल के पुष्पों से सुशोभित अनिर्वचनीय मनोहर रूप वाली थी।

ब्रह्मादिभिः सुरगणैस्तां दृष्ट्वैव मुहुर्मुहुः।
गायत्रीति नाम दत्तं मुखनिःसृतया गिरा।।१३।।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र प्रभृति देवताओं ने उस नायिका को बार-बार देखकर अपनी मुखनिःसृत भाषा से उसका 'गायत्री' यह नाम रखा।

गायत्र्युवाच

भो देवाः! कथयन्तु मां किमर्थमागतास्म्यहम्।
किं कार्यं वा करिष्यामि केन भावेन भूतले।।१४।।

उसके बाद गायत्री देवी ने कहा कि हे देवगण किस लिए मैं आयी हूँ। किस प्रकार तथा क्या काम इस भूतल पर मैं करूँगी।

देवा ऊचुः

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामः किं त्वं तावत् करिष्यसि।
सृष्टिदुःखविनाशाय स्वयं शक्तिः प्रदास्यसि।।१५।।

उसके बाद देवी के प्रश्न को सुनकर देवताओं ने कहा कि हे देवि! आपको क्या करना है? उसको हम लोग कह रहे हैं। आप सृष्टि के दुःखों के विनाश के लिए अपनी शक्ति को प्रदान करेंगी।

चिदानन्दाभिदात्री त्वं सर्वदेवेषु शाश्वती।
नरकिन्नरचित्तेषु तथैव तेजधारिणी।।१६।।

देवताओं ने कहा–हे देवि! आप देवताओं के चिरन्तन आनन्द-प्रदायिनी हो तथा नर, किन्नर आदि के चित्त में तेजस् को धारण करने वाली हो।

भूलोके स्वर्गलोके तु तपःसत्येऽपि वै तथा।
पाताले जललोके वै गायत्री त्वं प्रपूजिता।।१७।।

और भी आप ही भूलोक, स्वर्ग लोक, तपः लोक, सत्य लोक, पाताल लोक, जल लोक आदि में निश्चयेन पूजिता हो।

सर्वमन्त्रेष्वाद्यवर्णा अग्रपूज्या सुरासुरैः।
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति तैर्नूनं प्राप्स्यते फलम्।।१८।।

आप ही समस्त मन्त्रों का पहला वर्ण हो। देवताओं एवं राक्षसों की अग्रपूज्या भी हो। और भी, आपकी जो पूजा करता है, वह अपने अभीष्ट फल को निश्चित रूप से प्राप्त करता है।

देव्युवाच

विलोक्य तु देवगणान् जगाद मधुरं वचः।
मम वासस्थलं कुत्र कुत्र स्थास्याम्यहं सदा।।१९।।

देवगणों को देखकर गायत्री ने मधुर तथा स्नेहपूर्ण वाक्यों से कहा कि मेरा निवास स्थान कहाँ पर है और मैं सर्वदा किस स्थान पर रहूँगी?

देवा ऊचुः

मर्त्त्यलोके तु यः शैलः नाम्ना सुमेरु विश्रुतः।
तत्र त्वं साम्प्रतं गत्वा तत्रैव स्थास्यसि सदा।।२०।।

देवताओं ने कहा–हे देवि! आप मर्त्त्यलोक में सुमेरु के नाम से जो प्रसिद्ध पर्वत है, उस पर अभी जाकर वहाँ सर्वदा वास करें।

यत्र देवाः परित्यज्य निवसन्ति सदा सुखम्।
स्वर्गलोकं नरैः पूज्यं सुरकन्याविभूषितम्।।२१।।

जिस स्थान पर देवतागण लोगों से पूज्य एवं देवकन्याओं से सुशोभित स्वर्गलोक को छोड़कर हर समय अति आनन्दपूर्वक वास करते हैं (उस सुमेरु नामक पर्वत पर आप वास करें)।

इमां वाणीं कथयित्वा देवाः जग्मुः स्वमालयम्।
देवी तु सुमेरुं गत्वा तत्राऽतिष्ठत् यथासुखम्।।२२।।

देवगण इस प्रकार कह कर अपने निवास स्थान को चले गये तथा देवी भी सुमेरु पर्वत पर जाकर वहीं सुखपूर्वक रहने लगी।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
जन्मस्थितिवर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(देवत्रयाभीष्टपूरणम्)

ऋषय ऊचुः

सर्वज्ञ! कथय तावत् किं तस्याः रूपवर्णनम्।
कदा कैः पूजिता देवी गायत्री वेदमातृका।।१।।

ऋषियों ने नारद महर्षि के प्रति कहा–हे सर्वज्ञ! सब जानने वाले आप उस वेदमातृका गायत्री देवी का रूपवर्णन करके कहो कि कब किनके द्वारा वह पूजित हुई थीं?।।१।।

नारद उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सृष्ट्यादौ परमेश्वरः।
विश्वसृजा प्रपूजिता प्रकृतित्वेन सा परा।।२।।

ऋषियों के वचन सुनकर नारद जी ने कहा कि हे मुनिगणों! आप सुनो, कब विश्व की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा जी से वह परा शक्तिस्वरूपा भगवती गायत्री प्रकृतिरूप से पूजित हुई थी।

तां प्रकृतिं मरुद्व्योमः यादसांपतिरेव च।
विष्णुरुद्रादयो देवाः पूजयन्ति सभक्तिकम्।।३।।

उस परा शक्तिस्वरूपा प्रकृति की पवन, आकाश, विष्णु, शिव–प्रभृति देवगण भक्ति के साथ पूजा करते हैं।

स्तुत्या तुष्टा तु सा देवी वासस्थानं विसृज्य च।
ब्रह्मलोकं समागत्य दिव्यरूपेण शोभिता।।४।।

वह गायत्री देवताओं की स्तुति से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मलोक में आकर अपूर्व रूप से शोभित हुई थी।

मण्डलस्थान् सुरगणान् गायत्रीध्यानधीरतान्।
अपश्यत्तां सुरगणाः दृष्ट्वा स्तुतिं व्यचिन्तयन्।।५।।

उस गायत्री देवी ने ध्यानमग्न मण्डलस्थ देवताओं को देखा और देवताओं ने भी उस गायत्री को देखकर स्तुति की।

ब्रह्मोवाच

भो मातस्तव पादौ च सरोजदलसन्निभौ।
पूजनीयौ दर्शनीयौ सर्वविघ्नविनाशकौ।।६।।

ब्रह्माजी ने कहा–हे माता! आपके पद्मपत्र के सदृश पादद्वय सब प्रकार के विघ्नों का विनाश करने वाले हैं और पूजनीय तथा दर्शनीय हैं।

निवसन्ति पितृगणाः वनस्पत्यादयः पुनः।
अङ्गुल्याग्रे दिवारात्रं सूर्याचन्द्रमसौ तथा।।७।।

आपकी अङ्गुलियों के अग्रभाग में पितृगण वनस्पति आदि वास करते हैं और भी विशेष भाव से सूर्य, चन्द्रमा, दिन एवं रात वास करते हैं।

रम्भावृक्षाभिनिन्दितौ जङ्घौ ते चंचलेक्षणे!।
केसरीसमकट्यां च मेखलासूत्रवेष्टितम्।।८।।

हे चंचलनयना देवि! आपका जङ्घाद्वय रम्भावृक्ष को भी तिरस्कृत कर रहा है। और भी, सिंह कटि के सदृश कटि में मेख-लासूत्र परिवेष्टित हुआ है।

तत्र सुष्ठु कटिस्थाने इन्द्राग्निवरुणादयः।
नाभिप्रदेशे विद्येऽहं कम्बुमिवेति गह्वरे।।६।।

उस सिंहसदृश आपके कटिप्रदेश में इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, कुवेर, दिक्पाल आदि देवता रहते हैं। मैं ब्रह्मा भी आपकी गभीर नाभिप्रदेश में विद्यमान हूँ।

उदरे महदाकाशः तिष्ठन्ति बहुलाः धराः।
नदनद्यादयः सन्ति पर्वताश्च मरुद्गणाः।।१०।।

आपके उदर में महान् आकाश, बहुसंख्यक पृथिवी, नद, नदी, पर्वत एवं मरुद्गण रहते हैं।

हृदये मेघचत्वारो स्थीयन्ते जलदायकाः।
तत्रापि विद्यते विष्णुः पङ्कजासनसंस्थितः।।११।।

आपके हृदयप्रदेश में जल देने वाले चार मेघ रहते हैं और उसमें भी कमल के आसन के ऊपर रहने वाले विष्णु विद्यमान हैं।

विल्वोपमस्तनाभ्यां च अमृतसदृशं पयः।
पानं कृत्वा जीवगणाः तृष्णां हरन्ति सर्वदा।।१२।।

आपके विल्वफल के सदृश दोनों स्तनों से अमृतसदृश दुग्ध को पीकर जीवगण हर समय अपनी तृष्णा का निवारण करते हैं।।१२।।

धान्यानि शस्यक्षेत्राणि पुष्टिमायान्ति सत्त्वरम्।
समुद्राश्च सरांसि च यान्ति त्वत् पयसा मधु।।१३।।

धान्य-क्षेत्र एवं अन्यान्य शस्य-क्षेत्र पुष्टि-लाभ कर रहे हैं। और भी, समुद्र और पुष्करिणी भी आपके दुग्ध से मधुमय हो रहे हैं।।१३।।

अष्टाङ्गयोगसिद्ध्यर्थं कम्बुकण्ठे वसेत् शिवः।
त्वन्नामाक्षरसङ्घातं जपति च मुहुर्मुहुः।।१४।।

अष्टाङ्ग योग की सिद्धि के निमित्त शिव जी आपके कण्ठ में वास करके आपके नाम-अक्षर का एक साथ वारम्वार जप करते हैं।।१४।।

सर्वे देवाश्च ऋषयः मुखपद्मे व्यवस्थिताः।
तथा च गुरवः सर्वे विद्यन्ते श्रद्धयान्विताः।।१५।।

समस्त देवता एवं ऋषिगण आपके मुखपद्म में निवास किये हुए हैं। और भी, समस्त गुरु श्रद्धा के साथ उस मुखपद्म में निवास करते हैं।।१५।।

गायत्र्युवाच

प्रसन्नाहं पद्मयोने! तव स्तुत्या त्वसंशयम्।
दास्यामि सकलां विद्यां तत्त्वज्ञानोपशोभिताम्।।१६।।

ब्रह्माजी की स्तुति से सन्तुष्ट होकर गायत्री देवी ने कहा कि,

हे पद्मयोनि! आपकी स्तुति से मैं अतीव प्रसन्न हूँ। आपको तत्त्वज्ञान-विशिष्ट सकल विद्या का दान करूँगी।

सृष्टिस्थितिविनाशानि क्वचिन्न व्यथयन्ति माम्।
जन्ममृत्युद्वयं नास्ति केवलं हंसःसंस्थिता।।१७।।

सृष्टि, स्थिति और विनाश मुझ गायत्री को कभी भी कष्ट नहीं देते हैं। मुझ गायत्री का न जन्म है और न ही मृत्यु। केवल मैं गायत्री हं सः-इन दो अक्षरों में ही स्थित हूँ।

सूर्यस्य तीव्ररश्मिना गतिरूपेण वन्दिता।
मायया किन्नरान् देवान् बध्नामि यक्षराक्षसान्।।१८।।

मैं गायत्री गतिरूप से सूर्य की तीव्र रश्मि के द्वारा पूजिता हूँ। मैं अपनी माया से किन्नर, देवता, यक्ष एवं राक्षस आदि को आबद्ध करके रखती हूँ।

विहाय मम मायां तु के न कुर्वन्ति दर्शनम्?
चिदानन्दमयं ब्रह्म अच्छेद्यं मुक्तिदायकम्।।१९।।

मेरी माया को छोडकर मुक्ति को प्रदान करने वाले अविनश्वर चिदानन्दमय ब्रह्म को कौन नहीं देखते? अर्थात् सभी देख सकते हैं।

ब्रह्मोवाच

त्वं वेदमाता जगति प्रसिद्धा ॐभूर्भुवःस्वःमहःसत्यरूपा।
वेदप्रवक्त्री परमेश्वरी त्वमतो भवन्तीं प्रणमामि नित्यम्।।२०।।

ब्रह्मा जी ने कहा कि हे देवि! आप वेदमाता के रूप में जगत में प्रसिद्ध हैं। आप भूः, भुवः, स्वः, महः सत्यरूपा हैं। आप वेद के विषय में सर्वज्ञ हैं। इसलिए आपको सदा हमलोग प्रणाम करते हैं।

शुष्काय नित्यं रससारदात्रीं
जाड्यान्धनाशां जनमानसानाम्।
देवैस्तु पूज्यां मुनिवृन्दवन्द्यां
नमामि त्वां तत्सवितुर्वरेण्यम्।।२१।।

आप हर समय नीरस प्राणियों को सरसता प्रदान करती हैं।

लोगों के मन से जड़ान्धता को दूर करती हैं। और भी, देवों के द्वारा पूज्या एवं मुनियों से वन्दनीया, सूर्य की वरेण्या आप गायत्री को मैं प्रणाम करता हूँ।

मधुपानमत्ता भृङ्गा मुहुर्गच्छति तत् पुरम्।
तथा सर्वे ऋषयस्तु त्वदङ्घ्र्यास्तु पयोमुखम्।।२२।।

मधुपान से प्रसन्न भ्रमर जैसे बारम्बार मधु के पास जाते हैं, उसी तरह समस्त ऋषिसमूह आपके पादों से अमृतरूपी जल को पीने के लिए आपके पास हर समय आते हैं।

तव नाम पिपासितुं सदैव तव मन्दिरम्।
हिंसाभावं परित्यज्य राक्षसाश्च व्रजन्ति वै।।२३।।

राक्षस भी हिंसा-भाव को छोड़कर आपके नाम का पान करने की इच्छा से हर समय आपके मन्दिर को जाते हैं।

सर्ववन्द्यां सर्वपूज्यां पूजयिष्यामि वा कथम्।
वामनोऽपि मृगाङ्काय मया हस्तौ प्रसार्यते।।२४।।

आप समस्त लोगों से पूजनीया एवं वन्दनीया हैं। आपकी पूजा हम कैसे करें। वामन होकर भी मैं चन्द्र को पकड़ने के लिए दोनों हाथों को बढ़ा रहा हूँ।

हे देवि! कृपया देहि यदि चेच्छसि मां क्षणम्।
भिक्षाद्वयं ययाचेऽहं नीचो दीनोऽनिकेतनः।।२५।।

हे देवि! यदि आप इच्छा करती हो तो इस गृहहीन, दीन जन को दो प्रकार की भिक्षा देने की कृपा करो।

आदाविमं वरं तावत् देहि देवि जगन्मयि।
वामपादोद्भवं वेदं ऋक्सामयजुरेव च।।२६।।

हे जगत् की माता गायत्री! आप अपने वाम पाद से सृष्ट- ऋक्, यजु, साम वेदत्रयी को मुझे पहले वर के रूप में प्रदान करें।

यदा त्वां चिन्तयिष्यामि यागयजनकर्मणि।
तदा मयि स्थास्यस्येव नात्र कार्या विचारणा।।२७।।

जब मैं यजन-याजन कर्म में आपका चिन्तन करूँगा, तब आप बिना कुछ विचार किये मेरे पास रहेंगी।

स्रोतांसि च परित्यज्य न तिष्ठसि यथा जलम्।
तथा त्वामेव सन्त्यज्य न स्थास्यामि कदाचन।।२८।।

जैसे स्रोतों को छोड़कर जल नहीं रहता है, उसी तरह आपको छोडकर मैं भी नहीं रह सकता।

गायत्र्युवाच

दत्वा वरद्वयं देवी तथास्तु इति चाब्रवीत्।
अहं तु सर्वस्मिन् काले स्थास्यामि तव सम्मुखे।।२९।।

गायत्री 'तथास्तु' यह कहकर दो वर प्रदान करके बोली-मैं निश्चित रूप से हर समय आपके सामने रहूँगी।

विष्णुरुवाच

जपापुष्पसमा देवि! अणिमैश्वर्यधारिणि।
मणिमाणिक्यशोभाढ्ये सोऽहंसः हंसवादिनी।।३०।।

विष्णु जी ने कहा-हे रक्तमन्दार पुष्प के समान अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य को धारण करने वाली, मणि-माणिक्यों से भूषिता सोऽहंसः हंसवादिनी देवि!

पंचवक्त्रे दशभुजे! गायत्री! कमलासने।
आयाहि वरदे देवि! ममाभीष्टार्थसिद्धये।।३१।।

विष्णु ने कहा-हे पाँच मुख वाली, दश हाथ वाली, कमल के आसन के ऊपर बैठने वाली, वर देने वाली गायत्री देवी! मेरे अभीष्ट-सिद्धि के लिए आप आइए।।

लोके तेजस्विनि मातः ब्रह्माणि ब्रह्मवादिनि।
अयोनिजे स्वयंभूते अद्भुतरूपधारिणी।।३२।।

संसार में तेजस् स्वरूपा ब्रह्माणी ब्रह्म तत्त्व को कहने वाली अयोनिजा, अद्भुत रूप को धारण करने वाली अपने आपको उत्पन्न करने वाली आप स्वयं हैं।

श्रुत्वा स्तुतिं वेदगर्भा विष्णुलोकं समागता।
अपश्यत् कंजनयना विष्णुं सर्वार्थसाधिका।।३३।।

स्तुति को सुनकर विष्णुलोक को आई हुई वेदगर्भा पद्मनयना समस्त प्रयोजनों की साधिका गायत्री देवी ने विष्णु को देखा।

ॐ भूर्भुवः स्वः महः सत्यं जनः तपस्तथैव च।
तत्सवितुर्वरेणीयं गायत्रीमजपत् सदा।।३४।।

जो विष्णु भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, सत्यं, तथा तपःपूर्वक तत्सवितुर्वरेणीयं गायत्री जी को सर्वदा जपा करते थे।

दृष्ट्वा तु गायत्रीं देवीं प्रणिपत्य जगत्प्रभुः।
पुनः पुनः स्तुतिं चक्रे बद्धांजलिः सहस्रकम्।।३५।।

जगत् के प्रभु विष्णु ने गायत्री देवी को देखकर उनको प्रणाम करके सहस्र वार बारम्बार स्तुति की।

पूर्वाह्णे गायत्रीरूपा सायाह्ने तु सरस्वती।
मध्याह्ने या च सावित्री तिस्रोऽवस्थां नमाम्यहम्।।३६।।

जो पूर्वाह्ण में गायत्री, सन्ध्या में सरस्वती तथा मध्याह्न में सावित्री-स्वरूपा है। इस प्रकार तीन अवस्था को मैं विष्णु प्रणाम करता हूँ।

गायत्र्युवाच

तव स्तुत्या प्रसन्नाहं वद किं वरमिच्छसि।
भो देवेश! ददामि त्वां नास्ति चात्रैव संशयः।।३७।।

गायत्री ने कहा- हे देवेश! आपकी स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूँ। आप किस वर की इच्छा करते हो? मैं निश्चय रूप से उसे प्रदान करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है।

भगवान् उवाच

प्रसन्ना यदि मे मात! वरं तावत् प्रयच्छ मे।
त्रिसन्ध्यायां मम पुरः त्रयीं गायतु सर्वदा।।३८।।

भगवान् विष्णु ने कहा- हे माता! आप यदि प्रसन्न हो तो यह

वर मुझे दीजिए कि आप हर समय मेरे सामने तीनों वेदों का तीनों संध्याओं में- प्रातः, मध्याह्न तथा सायं में गान करेंगी।

गायत्र्युवाच

सरस्वतीस्वरूपेण स्थास्यामि तव मन्दिरे।
वेदं गीत्वा तवाभीष्टं पूरयिष्यामि केशव।।३९।।

गायत्री ने कहा, हे केशव! आपके घर वैकुण्ठ में मैं सरस्वती के रूप को धारण करके वास करूँगी। साथ ही तीनों वेदों को गान करते हुए आपके अभीष्ट को भी पूर्ण करूँगी।

शिव उवाच

वेदरूपे वेदधात्री! सर्वाङ्गवेदभूषिते!।
धूम्रवर्णे त्रिनयने! योगाङ्गि योगरक्षिके।।४०।।

शिव जी ने कहा- हे गायत्री! आप वेदस्वरूपा, वेद को धारण करने वाली तथा सर्वाङ्ग वेदों से सुशोभित हैं। आप धूम्रवर्णयुक्त हैं तीन चक्षु वाली और योगाङ्ग एवं योग की रक्षिका हो।

सर्वभूतस्थिते देवि! त्रिगुणगुणधारिणि!।
सुरेश्वरि! नमामि त्वां वरदे ब्रह्मवादिनि!।।४१।।

हे देवि! आप सब प्राणियों में रहती हो, तीनों गुणों को धारण करती हो, देवताओं की अधिष्ठात्री, वर देने वाली तथा ब्रह्मवाक्य कहने वाली आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

हिमालयस्थिता देवी तत्रापश्यत्तु शङ्करम्।
स तु पंचमुखेनैव गायत्रीं जपति सदा।।४२।।

हिमालय में रहने वाली उस देवी गायत्री ने वहाँ पर शिव जी को अपने पाँच मुखों से गायत्री का सर्वदा जप करते हुये देखा।

मुखेनैकेन प्रणवं द्वितीयेनावनाष्टकम्।
तृतीये भूर्भुवःस्वश्च चतुर्थे हंसमन्त्रकम्।।४३।।

वहाँ पर शिव जी एक मुख से प्रणव को, द्वितीय मुख से आठ अवनाओं को, तृतीय मुख से भूर्भुवःस्वः को और चतुर्थ मुख से हंस मन्त्र को जपा करते थे।

पंचाननेन त्रिबीजं मन्त्रं सर्वं नियोजितम्।
विधाय प्रणवं नित्यमादौ प्रान्ते च सम्पुटम्।।४४।।

शिव जी पंचम मुख से समुदायमन्त्र को तीन बीज मिला कर आरम्भ शेष में सम्पुटपूर्वक प्रणव जप करते थे।

गायत्र्युवाच

सोत्फुल्लिताब्रवीद्देवी वरं दातुं समुत्सहे।
मनसा ध्यायसे यां भो! अहं सैव न संशयः।।४५।।

गायत्री जी ने अत्यन्त आनन्दित होकर कहा कि हे शिव! आप जो चिन्तन कर रहे हैं, मैं वही हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अग्न्युत्तापसमं चाहं ऋतुश्रेष्ठा वसन्तिका।
व्योमपृथ्वीद्वयोर्मध्ये मध्याकर्षणशक्तिका।।४६।।

गायत्री जी ने कहा कि मैं अग्नि के ताप के समान तेजस्विनी हूँ एवं ऋतुश्रेष्ठ वसन्त, आकाश एवं पृथिवी के बीच में मध्याकर्षण शक्तिस्वरूपा हूँ।

साधुसन्तेषु विज्ञेषु चिदानन्दमयी सदा।
अपरे चात्र संसारे ख्याताऽस्मि वेदमातृका।।४७।।

साधु, सन्त एवं विज्ञों के मध्य मैं सर्वदा हृदय को आनन्द देने वाली हूँ। साथ ही इस जगत् में वेदमाता के रूप में शोभित हूँ।

शिव उवाच

हे देवि! त्वं प्रसन्ना चेत् शृणु तावत् कथां मम।
सृष्टिस्थितिहितार्थाय चिन्तयिष्यामि त्वां यदा।।४८।।

शिव जी ने कहा कि हे देवि! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी बात सुनों, जब सृष्टि, स्थिति के मङ्गलनिमित्त मैं आपका चिन्तन करूँगा।

दुष्टसंहरणार्थाय त्यक्त्वा मेरुगिरिं तदा।
मम पुरः यथाशीघ्रं समेष्यसि न संशयः।।४९।।

दुष्टों के विनाश के लिए आप सुमेरु पर्वत को छोड़कर यथाशीघ्र मेरे सामने आ जाओगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

तथास्त्विति प्रतिज्ञाप्य सागच्छन्निजमन्दिरम् ।
शङ्करः ध्यानयोगेन कैलासे न्यवसत् पुनः ।।५०।।

गायत्री देवी तथास्तु कहकर अपने निवास स्थान को चली गयी। पुनः शिव जी ने ध्यानयोग से कैलास में वास किया।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः देवत्रयाभीष्टपूरणे द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

(गायत्र्याः शक्तिवर्णनम्)

ऋषय ऊचुः

देवर्षे! कृपया ब्रूहि गायत्र्याः शक्तिवर्णनम्।
येन शक्तिप्रभावेण वरं प्राप्तं तु दैवतैः।।१।।

हे देवर्षि! जिस शक्ति के प्रभाव से त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर) ने वर-लाभ किया, गायत्री जी की उस शक्ति के विषय में हम लोगों से कहिये।

सम्यग्भावेन व्याख्यातुं तस्याः शक्तिः परात्परम्।
यां श्रुत्वा दुःखसंसारात् मोक्षं नो स्यात् विशेषतः।।२।।

गायत्री जी की उस उत्कृष्ट शक्ति के विषय में हमें भली-भाँति कहो, जिसको सुन कर हम लोग दुःखसंसार से मोक्ष को प्राप्त कर सकें।

नारद उवाच

शृणुत ऋषयः सर्वे पृच्छथ गहनं वचः।
अहं वदामि तत्सर्वं न तु दुष्टे प्रकाशितम्।।३।।

उसके बाद नारद जी ने कहा, हे ऋषिगण! आप लोग जिस गोपनीय (गुह्य) रहस्य के विषय को पूछ रहे हो, उसको मैं कहूँगा, किन्तु दुष्टों के सामने प्रकाशित नहीं करुँगा।

ज्ञानरूपा तु सा देवी सर्वानन्दप्रदायिनी।
हंसासना श्वेतवर्णा तत्त्वार्थब्रह्मवादिनी।।४।।

ज्ञानरूपिणी वह देवी समस्त लोगों को आनन्द देने वाली है। वह हंसारूढ़ा, शुभ्र रूप वाली एवं ब्रह्मतत्त्व को कहने वाली है।

एकदा मुनिभिः सर्वैः पृष्टा गायत्रिमातृका।
भो मातस्त्वं ब्रूहि तावत् स्वशक्तिविषये पुनः।।५।।

कदाचित् समस्त ऋषिगणों ने मिलकर गायत्री माता से पूछा कि हे माता! आप अपनी शक्ति के विषय में कहो।

गायत्र्युवाच

नानाविधाः शक्तयश्च विद्यन्ते मम भूषणाः।
एकैकां तु प्रवक्ष्यामि शृणुत देवसत्तमाः।।६।।

ऋषियों के प्रश्न को सुनकर गायत्री जी ने कहा- हे देवश्रेष्ठ! मेरी नाना प्रकार की शक्तियाँ भूषणस्वरूपा हैं। उनको मैं एक एक करके कहूँगी। आप लोग सुनो।

मेधाशक्तिबलेनैव बुद्धिं प्राप्नोति मानवः।
वाक्यसिद्धिर्भवेत्तस्य संयमः परिसृज्यते।।७।।

मेरी मेधाशक्ति के बल से मानव बुद्धि को प्राप्त करता है। इससे उसकी वाक्यसिद्धि होती है तथा संयमभाव उत्पन्न होता है।

निष्ठाशक्त्या तथा देवाः दानवाः नरकिन्नराः।
एकाग्रतागुणं लब्ध्वा यान्ति विश्वासपात्रताम्।।८।।

निष्ठाशक्ति के बल से देवता, दानव तथा किन्नर आदि एकाग्रता रूप गुण को प्राप्त कर विश्वास-योग्य होते हैं।

तेजोशक्तिप्रभावेण तेजीयान् भवति सदा।
प्रतिभाबलमाप्नोति शक्तिमाप्नोति शाश्वतीम्।।९।।

तेजःशक्ति के प्रभाव से मनुष्य तेजीयान् होता है तथा प्रतिभा-बल को प्राप्त करता है। साथ ही चिरस्थायी शक्ति को प्राप्त करता है।

योगशक्त्यात्मनिष्ठा च वैराग्यभाव जायते।
आविलतां परित्यज्य तैर्नूनं ब्रह्म दृश्यते।।१०।।

योगशक्ति के प्रभाव से आत्मनिष्ठा एवं वैराग्यभाव उत्पन्न होता है एवं मन के मध्य में रहने वाली आविलता को छोड़कर मानव ब्रह्मदर्शी होता है।

तपःशक्त्या नम्रभावं जायते सात्त्विकं ततः।
निर्विकल्पः निराकारः शौचपूतादिका तथा।।११।।

तपस्या शक्ति के प्रभाव से नम्र एवं सात्त्विक भाव उत्पन्न होता है। उसके बाद वह निर्विकल्प भाव तथा शुद्धत्व पवित्रतादि का भी लाभ करता है।

समदृष्टिः समो भावः सेवाशक्त्या विशेषतः।
परदुःखकातरत्वं जायते मुनिपुङ्गव।।१२।।

हे मुनिपुङ्गव! सेवा शक्ति से विशेष रूप से सम दृष्टि, सम भाव, परदुःख-कातरादि भाव उत्पन्न होते हैं।

प्राणशक्त्युद्भवं दीर्घं लभते जीवनं ततः।
न स्पृशति रोगगणः शरीरक्षयकारकः।।१३।।

उसके बाद प्राण शक्ति से उत्पन्न होकर दीर्घ जीवन-लाभ करता है। शरीर को नष्ट करने वाले रोगगण उसे स्पर्श नहीं कर सकते हैं।

धृतिशक्तिबलेनाहं सर्वधैर्यप्रदायिका।
सर्वभारवहनार्थं शक्तिं ददामि सर्वदा।।१४।।

धृति शक्ति के बल से मैं सबको धैर्य देने वाली हूँ तथा समस्त प्रकार के भारों को वहन करने के लिए शक्ति को प्रदान करती हूँ।

रसशक्तिप्रभावेण कवित्वं लभते जनः।
दयार्द्रहृदयो भूत्वा कोमलत्वमवाप्तवान्।।१५।।

रसशक्ति के प्रभाव से मनुष्य कवित्व का लाभ करता है तथा दयार्द्र हृदय होकर कोमलता को प्राप्त करता है।

उत्पादकबलेनैव पृथिवीशस्यशालिनी।
वनस्पत्यादिभूतानि सन्तानः सृज्यते मया।।१६।।

मेरी उत्पादक शक्ति के बल से पृथिवी शस्यशालिनी होती है एवं वनस्पत्यादि सब प्राणियों की भी उत्पत्ति मेरे द्वारा होती है।

शान्तिशक्तिप्रदानेन जनानां रिपुषष्ठकाः।
गच्छन्ति सत्त्वरं दूरं कामक्रोधादयस्तथा।।१७।।

शान्ति रूपी शक्ति प्रदान करने से मनुष्यों के काम उससे क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि छः शत्रुगण शीघातिशीघ्र उससे दूर चले जाते हैं।

मम नित्यं शौरशक्तिः पुरुषार्थप्रदायिका।
निर्भया सर्वकार्येषु दुःखं वा यदि वा सुखम्।।१८।।

मेरी शौर्य शक्ति सर्वदा पुरुषार्थ को देने वाली है। सुख अथवा दुःख सब प्रकार के कार्यों में यह मनुष्य को भयशून्य करती है।

दिव्यशक्तिप्रभावेण जनाः सन्मार्गदर्शकाः।
भवन्ति दिव्यभावाश्च दिव्यगुणान्विताः सदा।।१९।।

दिव्य शक्ति के प्रभाव से मनुष्य उचित मार्ग के दर्शक, दिव्य भावों से युक्त एवं दिव्य गुणों से अन्वित हमेशा रहते हैं।

हिंस्रचौरादिकाः दुष्टाः दमशक्त्या निपातिताः।
भूतप्रेतपिशाचाश्च राक्षसाः यज्ञध्वंसकाः।।२०।।

दम शक्ति के प्रभाव से हिंस्र पशु, चोर, दुष्ट, भूत, प्रेत, पिशाच एवं यज्ञ को ध्वंस करने वाले राक्षस विनाश को प्राप्त होते हैं।

सृष्टिसंचालनार्थाय नूनं शक्तिं ददाम्यहम्।
भगवन् मत्प्रसादेन चालयति चराचरम्।।२१।।

सृष्टि (जीवजगत्) के पालन निमित्त मैं निश्चित रूप से शक्ति प्रदान करती हूँ। भगवान् मेरे प्रसाद (अनुग्रह) से इस चराचर जगत् का पालन करते हैं।

इष्टशक्तिप्रभावेण सर्वे जीवादयस्तथा।
कल्याणवृद्धिमायान्ति दीर्घायुषो भवन्ति च।।२२।।

इष्ट शक्ति के बल से समस्त प्राणी मङ्गल वृद्धिलाभ तथा दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।

कालशक्तिर्मम तावत् स्फूर्त्तिजागृतिकारकाः।
मृत्युभयविनष्टा च निरालसगुणान्विता।।२३।।

मेरी कालशक्ति ममता की तरह स्फूर्त्ति जागृत करने वाली है। यह कालशक्ति मृत्यु के भय को नष्ट करती है तथा आलस्यरहित गुणों से (मनुष्य को) युक्त करती है।

मर्यादावान् भवेन्नित्यं मैत्रीगुणप्रदायिका।
सौम्यं संयमतां लब्ध्वा सर्वकष्टसहास्तथा।।२४।।

मैत्रीगुण को प्रदान करने वाली उस कालशक्ति के प्रभाव से मनुष्य मर्यादावान् होकर नित्य सर्वदा सौम्यता और संयमता को प्राप्त कर सर्वविध दुःख को सहने में समर्थ होता है।

प्रेमशक्तिप्रभावेण प्राणिनां हृदि संस्थिता।
द्वेषभावो लयं याति नास्ति चात्रैव संशयः।।२५।।

मेरी प्रेमशक्ति के प्रभाव से प्राणियों के हृदय से द्वेषभाव दूर चला जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

रौद्रशक्त्या महाशत्रून् नाशयामि समन्ततः।
पुरुषार्थप्रदा नित्यं बलवीर्योपहारका।।२६।।

मैं अपनी रुद्रशक्ति से चारों तरफ शत्रुओं का विनाश करती हूँ। मैं हमेशा पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) रूप पुरुषार्थचतुष्टय एवं बल-वीर्य को प्रदान करने वाली हूँ।

सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं साफल्यं परिकीर्त्तितम्।
नित्यानित्यविधेयानि सुगमानि भवन्ति हि।।२७।।

मेरी साफल्य शक्ति से समस्त प्रकार के विघ्न शान्त हो जाते हैं एवं नित्यानित्यकर्म भी सहज हो जाते हैं।

अर्थं यशो प्रभावश्च भोगपदार्थप्राप्तये।
सौभाग्यवृद्धिमायाति धनशक्तिबलेन च।।२८।।

मैं धनशक्ति के प्रभाव से भोग वस्तुओं की प्राप्ति के निमित्त धन, यश एवं प्रभाव को प्रदान करके लोगों के सौभाग्य की वृद्धि भी करती हूँ।

ब्रह्मसृष्टां धरित्रीं च रक्षामि भूतलातलम्।
रक्षाशक्त्या स्वर्गलोकं ब्रह्माणं भूमिपालकम्।।२९।।

मैं गायत्री अपनी रक्षाशक्ति से ब्रह्मा के द्वारा सृष्टा पृथिवी, पाताल, स्वर्गलोक एवं पृथिवी के पालक "ब्रह्मा जी" की रक्षा करती हूँ।

सत्सङ्गं सत्यकर्माणि सत्यं वदति मानवः।
असत् सङ्गं परित्यज्य सच्छक्त्या परिचालितः।।३०।।

मेरी सत् शक्ति से परिचालित होकर असत् सङ्ग को छोड़कर मनुष्यगण सत् सङ्ग, सत्कर्म एवं सत्ययुक्त वचन कहते हैं।

नारद उवाच

शक्तिं श्रुत्वा च गायत्र्याः सर्वदेवगणस्तदा।
नमस्कृत्य पुनः देवीं स्तुतिं चक्रुश्च सन्निधौ।।३१।।

नारद जी ने कहा, उस देवी गायत्री की शक्ति को सुनकर समस्त देवता गण उनको नमस्कार करके उनके सामने पुनः स्तुति किये।

देवा ऊचुः

सहस्रनेत्रामनवद्यरूपाम-
निन्द्यतेजोभिः सुवन्दितां च।
अनेकवर्णां जगतो विधात्रीं
पद्मासनस्थां प्रणमामि देवीम्।।३२।।

देवताओं ने इस प्रकार कहा-हजारों नेत्रों से युक्ता, अत्यन्त सुन्दरी, प्रसंशनीय तेजों से वन्दनीया, नाना रूप वाली, जगत् को उत्पन्न करने वाली, कमल के आसन के ऊपर बैठी हुई उस गायत्री देवी को प्रणाम है।

हे श्यामलाङ्गि! रिपुवंशनाशिनि
सर्वासु विद्यासु विचक्षणे च।
वीणां सरोजं दधतीं कराब्जैः
नमामि त्वां शङ्करीं मुक्तिदात्रीम्।।३३।।

हे श्यामल वर्णरूप शरीर से विशिष्ट, शत्रु के वंश का विनाश करने वाली, समस्त विद्याओं में विचक्षणा, हाथों से वीणा

एवं कमल के पुष्पों को धारण करने वाली, मुक्ति को देने वाली, शङ्कर-स्वरूपा आप देवी गायत्री को नमस्कार हैं।

अश्रुतिः स्मृतिः करे तस्याः नानाशास्त्रादिकं तथा।
वामे च परिशोभन्ते स्वर्णालङ्कारभूषणाः।।३४।।

उस देवी के वाम हस्त में वेद, धर्मशास्त्र आदि शोभा पा रहे हैं। और भी सुवर्ण से निर्मित भूषण शोभा पा रहे हैं।

पुस्तकं चाक्षमालां च दिव्यायुधधरां सदा।
प्रणमामश्च त्वां देवीं वयं त्रिदिवरक्षकाः।।३५।।

पुस्तक, अक्षमाला एवं सदा दिव्य शस्त्रों को धारण करने वाली आप गायत्री देवी को तीनों दिशाओं की रक्षा करने वाले हम देवतागण प्रणाम करते हैं।

ये स्मरन्ति तथाभूतां देवीं जाग्रतकारिणीम्।
कार्येषु साहसस्तेषां कर्मनिष्ठा च जायते।।३६।।

जो मनुष्य इस प्रकार जाग्रत कराने वाली देवी का स्मरण करते हैं, उनका कार्यों में साहस एवं कर्म के प्रति निष्ठा उत्पन्न होती है।

येऽपि भजन्ति सततं तव नामाक्षरं नराः।
तैर्नूनं गम्यते तत्र यत्र न सन्ति हिंस्रकाः।।३७।।

जो लोग आपके नामाक्षर को हमेशा जप करते हैं, वे लोग उस जगह को जाते हैं जहाँ हिंस्रक मनुष्य नहीं रहते हैं।

क्षणस्थायिनि संसारे साधनार्थं हि साधकः।
भगवत्या गायत्र्यास्तु कृपामाप्नोति सत्त्वरम्।।३८।।

इस क्षणभङ्गुर संसार में साधक साधना के लिए अतिशीघ्र उस भगवती गायत्री देवी जी की कृपा को प्राप्त करता है।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः शक्तिवर्णने तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(देवतावरप्राप्तिः)

ऋषय ऊचुः

देवर्षे! कथयस्तावत् यत् पृच्छामस्तवाग्रतः।
यया शक्त्या हि देवेभ्यो वरं प्राप्तोऽभवत् पुरा।।१।।

ऋषियों ने कहा- हे देवर्षि! हम लोग आपके सामने यह पूछते हैं कि प्राचीन काल में जिस शक्ति के द्वारा देवता गण वर प्राप्त किये थे, उसे आप कहें।

कथं शशाप तां ब्रह्मा लोकस्रष्टा पितामहः।
कथं प्राप्तवती मुक्तिं कथय त्वमसंशयम्।।२।।

हे देवर्षि! आप संशय-रहित होकर कहें कि किसलिए लोगों की सृष्टि करने वाले पितामह ब्रह्मा जी ने उन्हें शाप दिया और किसके द्वारा गायत्री ने मुक्ति को प्राप्त किया था।

नारद उवाच

भो सुसौम्या मुनिश्रेष्ठाः यूयं पृच्छथ यद् वचः।
तदतीव गोपनीयं न वर्ण्यते कदाचन।।३।।

नारद जी ने कहा, हे सौम्य ऋषिश्रेष्ठ! जो आप लोग पूछ रहे हैं, वह अत्यन्त गोपनीय है तथा कदापि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

एकदा सृष्टिकर्त्ता तु यज्ञाय चिन्तितोऽभवत्।
सर्वान् प्राणिगणांश्चान्यान् पशून् द्रष्टुं व्यचिन्तयत्।।४।।

कदाचित् सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा जी ने समस्त प्राणियों की सृष्टि के लिए यज्ञ के निमित्त चिन्तन किया।

अङ्कुरारोपणं कर्म प्रारभच्च ततः परम्।
पंचशस्यं समानीय चिक्षेप यज्ञमण्डपे।।५।।

उस यज्ञ में अङ्कुरारोपण कर्म को प्रारम्भ करके यज्ञ-वेदिका के ऊपर पंचधान्य को लाकर निक्षेप किया।

मध्ये शिशुवेदकुण्डं चतुष्कुण्डं ततः परम्।
पूर्वे ऋग्वेदकुण्डं तु पश्चिमे सामकुण्डकम्।।६।।
उत्तरेऽथर्वकुण्डं च दक्षिणे यजुरेव च।
ऋग्वेदः चतुरस्रं स्यान्मेखला नवमाङ्गुलम्।।७।।
सामवेदार्द्धचन्द्रं च यजुः त्रिकोणमेव च।
अथर्वं वर्त्तुलाकारं मेखलात्रयसंयुतम्।।८।।

उसके बाद यज्ञवेदी के मध्य में शिशुवेद कुण्ड की स्थापना करने के बाद पूर्व दिशा में ऋग्वेद कुण्ड को, पश्चिम दिशा में साम कुण्ड को, उत्तर दिशा में अथर्व कुण्ड को और दक्षिण दिशा में यजुर्वेद कुण्ड को इस प्रकार चारों दिशाओं में चार कुण्डों की स्थापना किया। इनमें से ऋग्वेद कुण्ड नवमाङ्गुल मेखला से युक्त चतुरस्र कोण-विशिष्ट होता है। सामवेद अर्धचन्द्र परिमाण वाला, यजुर्वेद कुण्ड त्रिकोणाकार एवं अथर्ववेद कुण्ड वर्त्तुलाकार होना चाहिए। ये सब कुण्ड नौ अङ्गुल परिमित एवं तीन मेखलाओं से सुशोभित हुये।

शिशुवेदं पद्माकारं अष्टदलैस्तु शोभितम्।
प्रथमं चतुरङ्गुलं द्वितीयमङ्गुलत्रयम्।।९।।
तृतीयं द्व्यङ्गुलं चैव मेखलापरिशोभितम्।
तत्परं कण्ठनाभिश्च योनिः सप्तजिह्वा तथा।।१०।।

शिशुवेद कुण्ड आठ दलों से शोभित पद्माकार-विशिष्ट है। इसमें प्रथम चार अङ्गुल, द्वितीय तीन अङ्गुल एवं तृतीय दो अङ्गुल परिमित तीन मेखला थी। इसमें कण्ठ, नाभि, योनि एवं सप्तजिह्वा भी थी।

रुद्रभद्रमण्डलादीन् संस्कृत्य च ततः परम्।
वर्द्धनीं गणनाथं च स्थापनं कृतवान् स्वयम्।।११।।

उसके बाद स्वयं ब्रह्मा जी ने रुद्र मण्डल एवं भद्र मण्डल आदि का संस्कार करके गणपति एवं वर्द्धनी को स्थापित किया।

ऐशान्ये सूर्यमण्डलं द्वादशगणसंयुतम्।
गायत्रीं पूजनार्थाय कामधेनुं समाह्वयत्।।१२।।

यज्ञवेदी के ऐशान्य कोण में द्वादशगण-विशिष्ट सूर्यमण्डल का स्थापन करके गायत्री जी की पूजा के निमित्त कामधेनु को ले आये।

विष्णुं यज्ञपुरुषेण ऋक्सामयजुरादिकम्।
कुण्डरक्षाकरणाय आहूतवान् पितामहः।।१३।।

पितामह ब्रह्मा जी ने यज्ञपुरुष के रूप में एवं ऋक्, यजु, साम आदि कुण्डों की रक्षा-हेतु भगवान् विष्णु जी का आह्वान किया।

नभस्थाः देवताः सर्वे ऋत्विक्त्वेन निमन्त्रिताः।
इन्द्रादयोऽपि दिक्पाला आगता दिक्प्रपूजकाः।।१४।।

स्वर्गस्थ समस्त देवता आचार्य के रूप में निमन्त्रित हुये तथा इसमें इन्द्रादि दिक्पाल दिक्पूजक के रूप में आये।

विघ्नेशं विघ्ननाशाय वेदव्यासं प्रचारकम्।
वशिष्ठं होतृरूपेण नियुक्तिं दत्तवान् स्वयम्।।१५।।

स्वयं ब्रह्मा जी ने विघ्नों के निवारण-हेतु गणेश जी को, प्रचारक के रूप में वेदव्यास जी को एवं होता के रूप में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी को नियुक्त किया।

अन्यान् देवगणान् सर्वान् चरुहोत्रादिकर्मणि।
समिद्धोतृकरणाय प्रजापतिराहूतवान्।।१६।।

प्रजापति ब्रह्मा जी ने अन्य समस्त देवगणों का चरु होत्र आदि कर्मों में समिध होता के रूप में आह्वान किया।

रुद्रपुत्रं कार्त्तिकेयं षाण्मातुरं षड़ाननम्।
राक्षसानां विनाशाय यागरक्षकमेव च।।१७।।

यज्ञ के रक्षक के रूप में राक्षसों के विनाश के निमित्त भगवान् शिव जी के पुत्र षण्मुख-विशिष्ट छः माताओं वाले कार्त्तिकेय जी का आह्वान किया।

धनाधिपो यक्षराजः सर्वभावोपशामकः।
कर्त्तृत्वेन समाहूतः विश्वसृजा स्वयंभुवा।।१८।।

विश्व की सर्जना करने वाले ब्रह्माजी ने समस्त प्रकार के अभाव को दूर कर देने वाले धनपति यक्षराज कुवेर जी को यज्ञ के कर्त्ता के रूप में आमन्त्रित किया।

घृतकुम्भं सहस्रं च यज्ञे व्ययो भविष्यति।
धात्रा घृतसमुद्रं च यथाविधि निमन्त्रितः।।१९।।

इस यज्ञ में सहस्र कुम्भ-परिमित घृत व्यय होगा; इसलिए ब्रह्मा जी ने घृतसमुद्र को यथोचित रूप से निमन्त्रित किया।

भक्तानां भोजनार्थाय क्षीरसागरकन्यकाम्।
परमेष्ठी समानीता स्थापयेद् यज्ञवेश्मनि।।२०।।

यज्ञशाला में भक्तों के भोजन-सम्पादन हेतु क्षीरसागर से उत्पन्ना सागरात्मजा लक्ष्मी जी की स्थापना की।

शिवमाचार्यभावेन साष्टाङ्गयोगसाधकम्।
पंचाननं त्रिनेत्रं च नियुक्तवान् पितामहः।।२१।।

पितामह प्रजापति जी ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- इस अष्टाङ्ग योग के साधक पञ्चमुख, तीन नेत्र वाले भगवान् शिव जी को आचार्य के रूप में नियुक्त किया।

यज्ञारम्भे याज्ञिकैस्तु स्वस्तिवाचः प्रकीर्त्तितः।
चतुर्मुखश्चतुर्वेदान् पपाठ यज्ञमण्डपे।।२२।।

यज्ञ के आरम्भ में याज्ञिकों के द्वारा स्वस्तिवाचन मुखरित हुआ। ब्रह्मा जी ने भी उस यज्ञमण्डप में ऋक्, साम, यजुः, अथर्व- इस प्रकार चारों वेदों का चारों मुखों से पाठ किया।

गन्धर्वाः शंखनादांश्च वाद्यं चक्रुस्ततः परम्।
सङ्कल्पं कर्त्तुमाचार्यो ब्रह्माणमनुरोधवान्।।२३।।

उसके बाद गन्धर्वगण शङ्खनाद किया एवं विविध वाद्य यन्त्र बजाए और आचार्य जी ने सङ्कल्प करने के लिए ब्रह्मा जी से अनुरोध किया।

शिव उवाच

भो ब्रह्मंस्त्वं समागच्छ का ते कान्ता गता कुतः।
सा तु नूनमागतास्ति यज्ञशालास्थकर्मणि।।२४।।

आचार्य शिव जी ने कहा- हे ब्रह्मदेव! आप आओ। आपकी पत्नी कहाँ गयी। यज्ञशाला में होने वाले कर्म में उन्हें निश्चित रूप से आना चाहिए था।

ब्रह्मोवाच

कान्ता नास्ति ममात्रैव सोऽहंसः हंसः केवलम्।
संन्यासव्रतमास्थाय चरामि भुवनत्रये।।२५।।

ब्रह्मा जी ने कहा- मेरी यहाँ पर कोई पत्नी नहीं है। मैं केवल संन्यास व्रत को धारण कर तीनों भुवनों में सोऽहं हंसः- इस हंस मन्त्र का जप करते हुये भ्रमण करता हूँ।

तत्त्वगुणैर्निमग्नस्तु परमात्मन्यवस्थितः।
सृष्टेस्तु सर्जनार्थाय केवलं तस्य चिन्तनम्।।२६।।

मैं तत्त्वज्ञान में डूबकर उस परमात्मा में अवस्थित रहता हूँ। केवल सृष्टि की सर्जना-हेतु उसका चिन्तन करता हूँ।

शिव उवाच

विपत्नीको यज्ञं कर्त्तुं सर्वथैव त्वमङ्गलम्।
कथं यज्ञं भविष्यति कथ्यतां भो जनार्द्दन!।।२७।।

शिव जी ने कहा, हे जनार्द्दन! पत्नीरहित व्यक्ति के यज्ञ करने से हर तरह से अमङ्गल होता है। अतः किस प्रकार यज्ञ होगा? आप कहें।

विष्णुरुवाच

आचार्या गायत्रीं देवीं पूजयन्तु स्वमन्त्रभिः।
सापि नूनं परित्यज्य सुमेरुं देवसेवितम्।।२८।।
अस्माकं यज्ञशालां च आगमिष्यत्यसंशयः।
सुदया चेत् करोति सा तत्कर्म सुगमं भवेत्।।२९।।

विष्णु जी ने कहा- हे आचार्य! आप देवताओं के द्वारा

सेवित गायत्री देवी की अपने मन्त्रों से पूजा करें। वे निश्चय ही सुमेरु पर्वत को छोड़कर हमारे यज्ञशाला में आयेंगी, इसमें संशय नहीं है। यदि वे दया करेंगी तो यज्ञकर्म सरलता से सम्पन्न होगा।

भूतशुद्ध्यादिकीं शुद्धिं कृत्वाचार्यश्च सर्वतः।
स्व-स्व-गायत्रीपठनं प्रणवेन समायुतम्।।३०।।
कामधेनुं समानीय कृत्वा स्नानं च मार्जनम्।
विधाय ऋत्विजः सर्वे पूजयन्तु यथाविधि।।३१।।

समस्त आचार्य गण सब प्रकार से आसनशुद्धि, भूतशुद्धि आदि करके प्रणव को जोड़कर अपने-अपने गायत्री का पाठ करके कामधेनु को लाकर विधिपूर्वक स्नानादि कराकर यथापूर्वक पूजा करें।

आचार्या ऊचुः

भो मातस्त्वं जगन्माता शुक्लवर्णा पयस्विनी।
चतुष्पदा द्वौ कर्णौ च शृङ्गद्वयेन शोभिता।।३२।।
पयोऽमृतसमं ते च जीवजाग्रतकारकम्।
गोमये वसति लक्ष्मीः सर्वशुद्धिः प्रकीर्त्तिता।।३३।।

आचार्यों ने कहा, हे माता! आप जगत् की माता हो। आप शुक्लवर्णा, चतुष्पदों से युक्ता, कर्णद्वय तथा दोनों शृङ्गों से सुशोभिता गोरूपिणी हो। आपका दुग्ध अमृत के समान है और वह दुग्ध संसार को जीवन धारण कराता है। आपके गोमय में सर्वशुद्धता से प्रतिष्ठित लक्ष्मी वास करती है।

चतुःषष्टिकलायुक्तं चतुर्विंशतिसङ्ख्यकम्।
तत्त्वं सर्वं त्वयि युक्तं वरेण्ये देवि सर्वदा।।३४।।

हे पूजनीया देवि! चौंसठ कलाओं से युक्त चौवीस सङ्ख्यात्मक समस्त तत्त्व आपमें सदा निहित रहते हैं।

चतुष्पदे सिद्धिरस्तु द्वौ शृङ्गौ तत्सवर्णकौ।
श्रोत्रे च 'वितु' विद्यते वरे द्विनयने तथा।।३५।।

हे देवि! आपके चारों चरणों में सिद्धिरस्तु, दोनों शृङ्गों में

तत् और स- यह वर्णद्वय, दोनों कर्णों में वितु तथा दोनों नेत्रों में वरे विद्यमान रहता है।

णीयं तव मुखे देवि! भर्गो कर्णद्वये तथा।
देवस्य वक्षमूले च धीमहि पंजरद्वये।।३६।।

हे देवि! आपके मुख में णीयं, दोनों कर्णों में भर्गो, देवस्य वक्षमूल में तथा धीमहि पंजरद्वय में रहता है।

विशेष-यहाँ पर वाम कर्ण में णीयं तथा दक्षिण कर्ण में वरे विद्यमान है- यही अभिप्राय है।

धियो गुह्यस्थले पूते यो नः नाभिस्थले तथा।
प्रचो स्तनप्रदेशे च दयाच्च ऊरुद्वये।।३७।।

हे देवि! आपके पवित्र गुह्यस्थल में धियो तथा नाभिप्रदेश में यो नः, वक्षदेश में प्रचो एवं ऊरुद्वय में दयात् विद्यमान रहता है।

भूर्भुवःस्वःमहः सत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेणीयम्।
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।३८।।

हे देवि! आप भू, भुवः, स्व, महः एवं सत्यस्वरूपा हो। उस तपन की आप पूज्या हो। जिस सूर्य की आप पूजनीया हो, वह सविता हम लोगों को सद्बुद्धि की प्रेरणा देते हैं।

अर्थात् आप गायत्री भूर्भुवःस्वःमहःजनःतपःसत्यं ॐ तत्सवितु-र्वरेणीयं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रयोदयात्। ॐ आपोज्योति रसाऽमृतं ॐ भूर्भुवःस्वः सिद्धिरस्तु स्वरूपा हो।

आपो ज्योतिः रसोऽमृतं ॐ ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम्।
सोऽहं हंसः ओमाधारं वर्णाक्षरमष्टकम्।।३९।।

हे देवि! आप जल, तेजस्, रस और अमृत हो। आप ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः, ओम् हो तथा सोऽहं हंसः हो।

त्रैलोक्ये मन्त्ररूपा या गायत्री शक्तिरूपिणी।
पूजिता ऋत्विजैः सर्वैः प्राणायामादिकर्मभिः।।४०।।

तीनों लोकों में मन्त्रस्वरूपा, शक्तिस्वरूपिणी जो गायत्री देवी हैं, उनकी प्राणायामादि कर्मों से सब आचार्यगण पूजा करते हैं।

न्यासादिषट्कर्माणि च द्वित्रिंशन्मुद्रया तथा।
पूजां समाप्य गायत्र्याः नमस्कुर्वन्ति पण्डिताः।।४१।।

पण्डित व्यक्ति षट्कर्म आदि न्यास करके अर्थात् छः करन्यास एवं छः अङ्गन्यास करके तथा सुमुख सम्पुटादि बत्तीस मुद्राओं से गायत्री जी की पूजा समाप्त करके नमस्कार करते हैं।

नारद उवाच

स्वभवनं परित्यज्य आगता वेदमातृका।
स्फटिकाकारिणी कान्तिः सर्वाभरणभूषिता।।४२।।

नारद जी ने कहा कि इस प्रकार पण्डितों की स्तुति करने पर वह स्फटिक मणि के सदृश सौम्यवर्णा, समस्त अलङ्कारों से विभूषिता वेदमाता गायत्री अपने भवन को छोड़कर उस यज्ञमण्डप में आ गई।

समालोक्य देवगणाः गायत्रीं वेदमातरम्।
मुहुर्मुहुः नमस्कृत्य स्तुतिं चक्रुः ततः परम्।।४३।।

उपस्थित देवगण वेदमाता गायत्री जी को देखकर बारम्बार नमस्कार करते हुये उनकी स्तुति करने लगे।

अकारो वदने नित्यमुकारो हृदये तथा।
मकारः पादयोर्देवि! प्रणवं सर्वमङ्गके।।४४।।

हे देवि! आपके मुख में अकार, हृदय में उकार, दोनों पादों में मकार तथा समस्त अङ्ग में सदा प्रणव विद्यमान है।

जपाकुसुमैः परिशोभिताङ्गीम-
खिलधात्रीं मम ज्ञानदात्रीम्।
विश्वस्य नेत्रीं सुविचारकर्त्रीं
नमामस्त्वां देवीमनन्तमूर्त्तिम्।।४५।।

आपका अङ्ग जपापुष्प द्वारा सुशोभित है। आप सबकी जननी हो। हमारे लिए ज्ञान को देने वाली हो। समस्त विश्व की आप परिचालिका हो। उत्तम विचारों की कर्त्री तथा तथा आपका अनन्त स्वरूप है। इस प्रकार अनन्त गुणों से युक्त आपको हम नमस्कार करते हैं।

चन्द्रस्य कान्तिमभिनिन्दिता
सा अपूर्वकीर्त्तिः सचराचरेषु।
वृषारूढ़ां तां गरुड़ासनस्थां
नमामस्त्वां भूर्भुवनेषु पूज्याम्।।४६।।

समस्त चल-अचल संसार में आपकी अपूर्व कीर्त्ति चन्द्र की प्रभा को निन्दित कर रही है। तीनों भुवनों में पूजनीया, बृषभ पर आरूढ़ रहने वाली, गरुड़ के आसन को धरने वाली आप गायत्री जी को हम नमस्कार करते हैं।

लौहं यथा चुम्बति मानदण्डः
स्वकीयसत्ता तु निक्षिप्य दूरे।
तथैव तांश्च स्वयमात्मशक्त्या
जनान् नयन्ति तव पाद-पद्मम्।।४७।।

जैसे मानदण्ड चुम्बक अपनी सत्ता को दूर छोड़कर लौह को आकर्षित करता है, उसी प्रकार आपकी आत्मशक्ति लोगों को आपके पादपद्म के समीप आकर्षित करती है।

गायत्र्युवाच

भो देवाः! कथयन्तु मां किमर्थं च निमन्त्रिताः।
भवत् स्तुत्या वै प्रीताऽहं यदिच्छथ करोमि तत्।।४८।।

गायत्री जी ने कहा, हे देवगण! किस हेतु आप लोग मुझे निमन्त्रण दिये हैं, उसे कहिये। आपकी स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूँ। आप जो इच्छा करते हो, उस को मैं पूर्ण करुँगी।

अत्र पश्यामि गोविन्दं शिवं स्कन्दं विनायकम्।
इन्द्राग्नी वरुणं व्यासं वशिष्ठं यज्ञऋत्विजम्।।४६।।

यहाँ पर मैं भगवान् विष्णु, शिव, कार्त्तिकेय, गणेश, इन्द्र, अग्नि, वरुण, व्यास एवं यज्ञ के आचार्य वशिष्ठ प्रभृति को देख रही हूँ।

धनाधिपं कुवेरं च लक्ष्मीं कमलवासिनीम्।
सूर्यचन्द्रग्रहादींश्च यक्षगन्धर्वकिन्नरान्।।५०।।

और भी; धनाधिप; कुवेर, कमलपुष्प के ऊपर बैठने वाली लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्र, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर एवं समस्त ग्रहादि को देख रही हूँ।

अष्टावक्रादयश्चैव शक्तिः पराशरस्तथा।
अन्ये देवगणाः सर्वे कथं वा ते ह्युपस्थिताः।।५१।।

और भी; शक्ति, पराशर, अष्टावक्र आदि ऋषिगण एवं अन्य समस्त देवताओं के समूह किसलिए उपस्थित हुए हैं।

नारायण उवाच

विश्वशान्तिमहायज्ञं करिष्यति पितामहः।
ततः सर्वे देवाश्च आगताश्च समन्ततः।।५२।।

नारायण जी ने कहा, हे देवि! पितामह ब्रह्मा जी विश्वशान्ति महायज्ञ को करने वाले हैं। इसलिए समस्त देवसमूह चारों तरफ से आये हैं।

किन्तु महत् कार्यमेकं विद्यते तव चान्तिके।
तन्नूनं पूर्णमायाति हे देवि! तव स्वेच्छया।।५३।।

हे देवि! परन्तु एक महान् कार्य आपके समीप में है, जो कि निश्चित रूप से आपकी इच्छा से पूर्णता को प्राप्त होगा।

गायत्र्युवाच

यूयं जगत्पितरश्च युष्माकं किमु कामना।
अहं तत् पूरयिष्यामि केवलं हर्षवर्द्धकम्।।५४।।

गायत्री जी ने कहा- आप लोग जगत् के पिता एवं माता हो। आप लोगों की क्या इच्छा है, मैं उसे आपके आनन्दवर्धन हेतु पूर्ण करूँगी।

नारायण उवाच

हे देवि! व्याजवचनं न ब्रूयास्त्वं कदाचन।
भवती सर्वधर्मज्ञा आद्या शक्तिः पराऽपरा।।५५।।

नारायण जी ने कहा, हे देवि! आप कदापि कपटता से युक्त

बातें न करें। आप परा तथा अपरा आद्या शक्ति हो और समस्त प्रकार के धर्म को जानने वाली हो।

यदि त्वं सत्यपाशेन आबद्धा परमेश्वरि!।
तर्हि वयं यथाशक्तिः याचामहे तवाग्रतः।।५६।।

हे जगत् की स्वामिनि! यदि आप सत्यपाश से आबद्ध हो तो हम लोग अपनी शक्ति के अनुसार आपके सम्मुख कुछ प्रार्थना कर रहे हैं।

गायत्र्युवाच

हे केशव! सत्यवाक्यं वारत्रयं करोमि तत्।
युष्माकमभिलाषं च पूरयिष्याम्यहं खलु।।५७।।

गायत्री जी ने कहा, हे केशव! मैं तीन बार सत्य वाक्य कह रही हूँ कि निश्चित रूप से आप लोगों की अभिलाषा को पूर्ण करुँगी।

नारायण उवाच

शृणुष्व भो जगन्मात! अस्माकं दुःखकारणम्।
वेधसः कान्तारूपेण आत्मानं तु नियोजय।।५८।।

नारायण जी ने कहा, हे जगत् की माता! आप हमारे दुःख के कारण को सुनो। आप ब्रह्मा जी की पत्नी के रूप में अपने-आपको नियोजित करें।

ततः सर्वं यज्ञकर्म आरभ्यते शिवेन तु।
तत् श्रुत्वा वचनं सर्वं वेदमाताऽब्रवीत्तदा।।५९।।

उसके अनन्तर शिव जी के द्वारा समस्त यज्ञकर्म आरम्भ किया जाएगा। इस प्रकार के वचनों को सुनकर वेदमाता गायत्री जी ने पुनः कहा।

गायत्र्युवाच

कम्बुपाणे! तावदहं सत्यबद्धा यदि शृणु।
द्वे वाक्ये मम विद्येते प्रथमं ब्रह्मसन्निधौ।।६०।।

तिष्ठामि शक्तिरूपेण द्वितीये वेदमातृके।
पुत्रवत् ब्रह्मणा साकं न स्थास्यामि कदाचन।।६१।।

गायत्री जी ने कहा, हे पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को धारण करने वाले भगवान् विष्णु! यदि मैं सत्यपाश से आबद्ध हुई हूँ, तो मेरी दो बातें सुनो। प्रथमतः ब्रह्मा जी के साथ मैं शक्तिरूप से रहूँगी और पुत्रतुल्य उनके साथ पत्नीरूप से कदापि नहीं रह सकती।

किन्त्वहं तेन साकं च परोक्षे पत्नीरूपधृक्।
सर्वकार्यं करिष्यामि नास्त्यत्र संशयः शिव।।६२।।

परन्तु हे शङ्कर! मैं परोक्ष रूप से उन ब्रह्मा जी के साथ पत्नी रूप को धारण करके समस्त कार्यों का साधन करुँगी, इसमें कोई संशय नहीं है।

नारद उवाच

गायत्र्याः शान्तिवचनं श्रुत्वा पितामहस्तदा।
क्रोधजर्ज्जरितो भूत्वा रम्भावातप्रकम्पिता।।६३।।

नारद जी ने कहा- उस समय पितामह ब्रह्मा जी गायत्री जी के इस प्रकार के शान्तिवचनों को सुनकर पवन के द्वारा कदली वृक्ष की भाँति क्रोध से जर्ज्जरित होकर काँपने लगे।

क्रोधाग्निना दिशः सर्वा धूमैश्च पूरिता यदा।
ज्ञातं किं वा चतुर्दिक्षु प्रलयं ग्रासितं तदा।।६४।।

ब्रह्मा जी की क्रोधाग्नि से जब समस्त दिशाएँ धूम से व्याप्त हो गयीं, तब चारो दिशाओं को प्रलय ग्रस लिया, इस प्रकार प्रतीत हुआ।

अग्निं दृष्ट्वा याज्ञिकाश्च पलायन्ते दिशो दश।
भीताः यक्षादयस्सर्वे राक्षसाः नरकिन्नराः।।६५।।

उस अग्नि को देखकर याज्ञिक लोग, राक्षस, मनुष्य, किन्नर, समस्त देवता आदि गण दशो दिशाओं में पलायन करने लगे।

ततः परं पद्मयोनिरभिशापं तु दत्तवान्।
येन शक्तिबलेनैव दर्पं तावत् करोषि ह।।६६।।

सा शक्तिः क्षयमायातु ध्रुवं तावद्वचो मम।
अभिशापेन गायत्र्याः सर्वशक्तिः क्षयं गता।।६७।।

उसके बाद पद्मयोनि ब्रह्मा जी ने अभिशाप देते हुए कहा कि जिस शक्ति के बल से यहाँ पर तुम गर्व कर रही हो, वह शक्ति निश्चित रूप से क्षय को प्राप्त हो जाए, यह मेरा वचन है। ब्रह्मा के उस अभिशाप से गायत्री जी की सारी शक्तियाँ नष्ट हो गईं।

राहुग्रस्तेन्दुवत्तस्याः सर्वं गर्वो विचूर्णितः।
गायत्र्याश्चाभिशापं तु श्रुत्वा सुरगणस्तदा।।६८।।

उसके बाद उस गायत्री जी का गर्व राहुग्रस्त चन्द्र की तरह टूट गया। जिस प्रकार अनिन्द्य तेजोमय चन्द्र राहु से ग्रसित होने के उपरान्त निष्प्रभ हो जाता है, उसी प्रकार अतितेजोमयी गायत्री जी ब्रह्मा जी के अभिशाप के प्रभाव से तेजोरहित हो गईं। उस समय समस्त देवता गण गायत्री के प्रति प्रदत्त उस अभिशाप को सुनकर इस प्रकार बोले।

देवा ऊचुः

हे हंसनाथ! लोकेश! ब्रह्मवित् चतुरानन!।
त्वामेव शरणं नाथ! अस्माकमिष्टभाजनम्।।६९।।

देवताओं ने कहा- हे हंसनाथ, लोकस्वामी, ब्रह्मतत्त्व को जानने वाले चतुर्मुख, हम सबके आराध्य ब्रह्मदेव! आप ही हम लोगों के इष्ट एवं शरण हो।

अगतीनां गतिर्नाथ! रक्षनाशविधायक!।
नाभ्युद्भूत विश्वकर्मन्! नमस्ते पादपङ्कजे!।।७०।।

हे प्रभो! आप गतिहीनों के लिए गति हो। आप रक्षा एवं विनाश करने वाले हो। आप भगवान् विष्णु जी की नाभि से उत्पन्न हुये हो। आप विश्व के कर्त्ता हो। इस प्रकार आपके चरणकमलों में हमलोगों का नमस्कार है।

भवाब्धिपारतरण्यां नाविकस्त्वं न संशयः।
कथं सिन्धुं तरिष्यामस्तन्नूनं क्रियते त्वया।।७१।।

हे ब्रह्मा जी! आप इस संसाररूपक समुद्र से पार होने के लिए नौका के नाविक हो, इसमें सन्देह नहीं है। हम लोग यह सागर किस प्रकार पार करेंगे, उसे निश्चित रूप से करो।

यज्ञस्थाने क्रुधस्तावन्न कृतः केनचित् कदा।
यत्त्वं वेद विवेकश्च तत् किं ब्रूमस्तवाग्रतः।।७२।।

हे प्रजापिता ब्रह्मा जी! किसी भी समय में, कोई भी कारण हो, यज्ञस्थान पर कोई भी क्रोध नहीं करता है। आप इसे भली-भाँति जानते हो और आप विवेकी भी हो। अतः आपके सम्मुख हम लोग क्या कहें।

शापग्रस्ता तु सा देवी कथं यज्ञो भविष्यति।
शक्तिं विना यज्ञकर्म सर्वथा निष्फलं भवेत्।।७३।।

हे पितामह! गायत्री देवी आपके शाप से अभिशप्ता है। किस प्रकार से यज्ञ सम्पादित होगा। उनकी शक्ति के बिना सब प्रकार से यज्ञ कर्म निष्फलता को प्राप्त हो जाएगा।

स्तुत्या तुष्टः स्वयंब्रह्मा गायत्र्याश्चाभिशापकम्।
नेतुमिच्छन् मन्त्रमेतत् दत्तवान् देवसन्निधौ।।७४।।

देवताओं के द्वारा इस प्रकार की स्तुति से सन्तुष्ट होकर स्वयं ब्रह्मा जी ने गायत्री जी को दिये हुये अभिशाप से मुक्त करने की इच्छा करते हुये देवताओं को यह मन्त्र प्रदान किया।

ब्रह्मोवाच

ऋषिच्छन्दादिकं कृत्वा ब्रह्मा मन्त्रं पपाठ ह।
त्वं ब्रह्मी त्वं स्थितप्रज्ञा वदन्ति वै विवेकिनः।।७५।।

ऋषि, छन्द आदि करके स्वयं ब्रह्मा जी ने मन्त्र का पाठ किया और कहा कि हे देवि गायत्री! आप ब्रह्मस्वरूपिणी तथा स्थितप्रज्ञा हो, ऐसा विवेकीजन कहते हैं।

ॐ भूर्भुवःस्वःमहःसत्यं अउम त्रिबीजं तथा।
ऐं ह्रीं श्रीं शक्तित्रितयं गौं गायत्रीं ततः परम्।।७६।।

उस गायत्री मन्त्र में ॐ भूः, भुवः, स्वः, महः, सत्यं, अ उ

म- यह त्रिवीज, ऐं ह्रीं श्रीं तीन शक्तियाँ तथा उसके बाद गौं गायत्री है।

त्वं किलैकाक्षरीरूपा कौमारी स्वाहावर्णिका।
मम शापात् विनिर्मुक्ता भव देवि! युगे युगे।।७७।।

हे गायत्री! आप कौमारी, स्वाहा वर्ण से युक्ता एकाक्षरी रूपा हो। मेरे शाप से प्रत्येक युग में आप मुक्तिलाभ करें।

नारद उवाच

तस्याः शापे गते देव्याः पुनः शक्तिर्न्यवर्त्तत।
केतुग्रस्तात् परं भानोरुज्ज्वलं किरणं समम्।।७८।।

नारद जी ने कहा- उस देवी के शाप नष्ट हो जाने पर पुनः उस गायत्री जी ने शक्ति को प्राप्त किया। उस समय वह देवी केतुग्रस्त के समनन्तर उज्ज्वल प्रभासदृश दृश्यमानता को प्राप्त हुयी।

नम्रभावं समाधायाब्रवीत् सा देवसन्निधौ।
उपायं कथये चाहं शृणुध्वं देवसत्तमाः।।७९।।

उसके वाद देवी गायत्री ने अत्यन्त विनम्र होकर देवताओं के समीप कहा कि हे श्रेष्ठ देवगण! मैं एक उपाय कह रही हूँ, उसे आप लोग सुनो।

गायत्र्युवाच

आदित्यतेजो विधृतां नायिकां कुलभूषिताम्।
स्वाङ्गजातं प्रयच्छामि गृहाण मधुसूदन!।।८०।।

गायत्री जी ने कहा- हे मधुसूदन! सूर्यदेव के अपने अंग से उत्पन्न, तेजस् को धारण करने वाली, कुलभूषणस्वरूपा नायिका इस शक्ति को मैं प्रदान कर रही हूँ, इसे ग्रहण करें।

पत्नीरूपं समाधाय सा शक्तिर्ब्रह्मणोऽन्तिके।
स्थित्वा यज्ञादिकर्माणि पूर्णं करोतु सर्वथा।।८१।।

वह शक्ति पत्नीरूप को धारण करती हुयी ब्रह्मा जी के समीप में रहकर सब प्रकार से यज्ञ कर्मों को पूर्ण करेगी।

तां विलोक्य मुदं प्रापुः दिव्याहारविभूषिताम्।
तप्तहाटकवर्णाभामपूर्वां गुणसंयुताम्।।८२।।

तप्त कांचन प्रभा को धारण करने वाली, अपूर्व गुणों से युक्ता दिव्यहार-विभूषिता उस देवी को देखकर देवगण आनन्दित हुये।

मुनिमनोहरां दिव्यां प्रसन्नकमलाननाम्।
पीतवस्त्रपरीधानां मणिमुकुटमण्डिताम्।।८३।।

उस शक्तिस्वरूपिणी, मुनिमन को हरने वाली, दिव्य स्वरूपा, कमलानना, पीत वस्त्र को धारण करने वाली, मणियुक्त मुकुट से मण्डिता नायिका को देखकर देवताओं को आनन्द प्राप्त हुआ।

सावित्रीति तु गायत्र्याः जातायै नाम दत्तवान्।
स्वयं विष्णुः सुरज्येष्ठः प्रहृष्टः सन् जनार्द्दनः।।८४।।

स्वयं देवश्रेष्ठ जनार्द्दन भगवान् विष्णु ने गायत्री से उत्पन्न हुयी उस कन्या का नाम सावित्री दिया।

देवानां च मतं नीत्वा माङ्गल्यादिककर्मणि।
तां देवीं सादरं गृह्णन् नियुक्तोऽभूत् प्रजापिता।।८५।।

समस्त लोगों के पिता ब्रह्मा जी ने समस्त देवताओं का अभिमत लेकर उस मङ्गल यज्ञकर्म में उस देवी सावित्री को आदर के साथ ग्रहण करके नियुक्त हुये।

शङ्खनादं चकारोच्चैः मधुकैटभघातकः।
यज्ञरक्षादिगन्धर्वैर्दुन्दुभिः परिवादितः।।८६।।

मधु और कैटभ दैत्य के नाशक भगवान् विष्णु ने शङ्खनाद किया। उसके बाद यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि दुन्दुभि वाद्य बजाने लगे।

श्रीकण्ठो डम्बरूकं च तालकाहालिकैस्तदा।
ववर्षुः पारिजातादीन् सुरकन्यादयस्तथा।।८७।।
देव्यां पितामहे चान्याः कृतवत्योपवर्षणम्।
करवीरैश्च विविधैर्वनस्पत्यादिसम्भवैः।।८८।।

उस समय श्रीकण्ठ भगवान् आशुतोष ने ताल एवं काहालिका के साथ ड़मरू बजाया था। देवकन्याओं ने भी पारिजातादि पुष्पों का तथा करवीर आदि वन में प्राप्त पुष्पों का उस देवी सावित्री एवं पितामह के ऊपर वर्षण किया था।

ततो यज्ञविधानं च पत्न्या साकं पितामहः।
एकविंशदिनं यावत् सङ्कल्पं कृतवान् स्वयम्।।८६।।

पत्नी सावित्री देवी के साथ स्वयं ब्रह्मा जी ने इक्कीस दिन तक यज्ञविधान का सङ्कल्प किया।

परोक्षे नारीरूपेण गायत्री तत्र संस्थिता।
सानन्दं निर्जराः सर्वे यज्ञं चक्रुः मुदा पुनः।।६०।।

उस यज्ञस्थल में देवी गायत्री जी परोक्ष में नारी रूप से उपस्थित थी। पुनः समस्त देवता गण आनन्द के साथ यज्ञकर्म किये।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
देवतावरप्राप्तिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः

अथ पंचमोऽध्यायः

(शाप-विमोचन)

ऋषय ऊचुः

भो मुने! कथयत्वस्मान् कथं चास्मत् कलेवरे।
सर्वव्यापिनि गायत्री गुणातीता प्रकाशिनी।।१।।

ऋषियों ने कहा- हे मुनिश्रेष्ठ नारद! हम लोगों के इस शरीर में त्रिगुणातीत सर्वव्यापिनी समस्त तत्त्वों की प्रकाशिका किस प्रकार से है, उसे कहो।

चतुःषष्टिकलाधात्री देवी संसारपूजिता।
निःसंशयं बोधय त्वं स्थापयित्वा यथायथम्।।२।।

चौंसठ कलाओं को धारण करती हुयी संसार में पूजनीया वह देवी कैसी है, उसे निश्चित ही अच्छी तरह से कहो।

नारद उवाच

पृच्छन्ति यद् भवन्तो मे गूढ़ं गोपनमेव च।
तात्त्विकं परमाराध्यं सुसाधितं शिवेन वै।।३।।

नारद जी ने कहा- हे मुनिगण! आप लोग मुझे जो पूछ रहे हो, वह अत्यन्त गोपनीय, तात्त्विक पूर्णज्ञान आराध्य है तथा शिव जी के द्वारा सम्यक् साधित है।

सूर्यचन्द्रसुरेन्द्राश्च मार्गणं यस्य कुर्वते।
तदहं कथयिष्यामि शृणुत मुनिसत्तमाः।।४।।

हे श्रेष्ठ मुनिजन! सूर्य, चन्द्र, इन्द्र आदि देवता गण जिसकी खोज करते हैं, उसके विषय में मैं कहूँगा।

एकदा भगवान् विष्णुः स्वमानसोपचारकैः।
महाशक्तिं पूजयित्वा गूढ़तत्त्वं पप्रच्छ वै।।५।।

एक बार भगवान् विष्णु जी ने अपने मानसोपचार के द्वारा उस महाशक्ति की पूजा करके इस गूढ़ तत्त्व को पूछा था।

गायत्र्युवाच

जलस्रोतधरा चास्मि शब्दस्पर्शादिकात्मिका।
जीवनिर्जीवजीवात्मा सर्वप्राणिप्रकाशिका।।६।।

गायत्री जी ने कहा कि मैं इस पृथिवी में जलस्रोतों को धारण की हुयी हूँ। शब्द, स्पर्श, रूप स्वरूपात्मक चेतन-अचेतन समस्त प्राणियों की प्रकाशिका हूँ।

नारायण उवाच

आद्याशक्ति महामाये हंसात्मा हंसवाहिनि!।
सर्वविद्यासु निपुणे! मुनीनां त्राणकारिणि!।।७।।
भवती वदति नित्यं पृथ्वीतत्त्वविधित्रयीम्।
अतस्तं विषयं मातः! वदतु स्वमुखाम्बुजात्।।८।।

नारायण जी ने कहा- हे हंसवाहिनी, आद्याशक्ति, महामाया, हं सः स्वरूपरूपा, समस्त विद्याओं में निष्णाता, मुनियों की रक्षाकारिणी! आप सर्वदा पृथिवी तत्त्व के रूपत्रय को कहती हैं। अतः अपने मुख से उस विषय को कहो।

गायत्र्युवाच

सर्वं सहैव पृथिवी सर्वोत्पादनसक्षमा।
प्रकृत्या जीवसृष्टिश्च करोमि भुवनत्रये।।९।।

पृथिवी सर्वंसहा के रूप से समस्त जगत् को उत्पन्न करने में समर्थ है। मैं इन तीनों भुवनों में प्रकृति के द्वारा जीवों की सृष्टि करती हूँ।

जलवाष्पं समुद्भूय वर्षणं च करोम्यहम्।
सुजला सुफला नित्यं भवति मम शक्तितः।।१०।।

मैं जल को वाष्पीभूत करा कर वर्षण कराती हूँ। मेरी शक्ति के कारण पृथिवी सर्वदा सुजला, सुफला होती है।

आकाशस्तु यथासर्वमावेष्टयति विश्वकम्।
अहं मायाबलेनैव बध्नामि सचराचरम्।।११।।

जिस प्रकार आकाश समस्त विश्व को ढ़ँक कर रखा हुआ है, उसी प्रकार मैं अपनी माया शक्ति के कारण चल-अचल समस्त जगत् को बाँध करके रखती हूँ।

अग्निर्यथा पदार्थानि भस्मसात् कुरुते स्वयम्।
ममाग्न्यङ्गप्रभावेण जितेन्द्रियाः भवन्ति वै।।१२।।

जिस प्रकार अग्नि स्वयं पदार्थों को भस्मीभूत करता है, उसी प्रकार मेरे अङ्ग अग्नि के प्रभाव से लोग इन्द्रियों को भस्मीभूत करके जितेन्द्रिय होते हैं।

ये सज्जनाः दिवारात्रं साधयन्ति सुसंयतः।
कामं क्रोधं परित्यज्य तान् मोक्षं च ददामि वै।।१३।।

जो सज्जन व्यक्ति काम, क्रोध का परित्याग करके दिवस और रात्रि हर समय इन्द्रियों को नियन्त्रित करके मेरा साधन करते हैं, उनको निश्चित रूप से मैं मोक्ष प्रदान करती हूँ।

त्रिकालज्ञाः भवन्त्येते क्षुधातृष्णा न विद्यते।
अजरामरवत् भूत्वा सर्वदा चिन्तयन्ति माम्।।१४।।

ये लोग त्रिकालज्ञ होते हैं। इनको भूख और प्यास नहीं होती है। ये अजर तथा अमर होकर सर्वदा मेरा चिन्तन करते हैं।

सुगन्धितेषु पुष्पेषु भ्रमन्ति मधुपाः यथा।
तथैव साधकाः सर्वे अन्विष्यन्ति च मत्पदम्।।१५।।

जिस प्रकार मधुपान करने वाले भ्रमर सुगन्धित पुष्पों पर मधु-पान के हेतु भ्रमण करते रहते हैं, उसी प्रकार साधक मेरे पाद का अन्वेषण करते हुए साधना करते हैं।

समाधियोगमास्थाय पंचप्राणादिकांस्तथा।
संयम्य यः पुमान् नित्यं निशार्द्धे मुद्रितेक्षणः।।१६।।
स्वधर्मेऽप्यचलो ये हि मम मन्त्रं जपेत् शतम्।
तमहं मम देहे च लीनं करोमि निश्चितम्।।१७।।

जो व्यक्ति अर्धरात्रि में आँख मूँदकर प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान- इस प्रकार पाँच प्राणवायु को संयत करके समाधियोग

को धारण करके, जो कोई भी व्यक्ति मेरे मन्त्र का स्थिर रूप से शतसंख्यक जप करता है, उसे मैं अपने शरीर में लीन करती हूँ।

स्वस्य क्षीरं सन्ततिभ्यो दीयते मातृभिर्यथा।
तेषां जीवनरक्षायै स्तनयोः निःसृतं मधु।।१८।।
तथैव मम नाम्नि च गुणे रूपे रसे सदा।
स्थीयते स बालवन्नित्यं मन्ये नास्त्यत्र संशयः।।१९।।

जिस प्रकार माता अपने पुत्रों को अपने स्तन से दुग्ध देती है। वह अमृत-समान दुग्ध उन सन्तानों के जीवन-रक्षण के लिए स्तनयुग्म से क्षरित होता है, ठीक उसी तरह जो पुरुष मेरे नाम, गुण, रूप और रस में हमेशा आकृष्ट रहता है, उसे मैं पुत्रवत् स्नेह करती हूँ, इसमें सन्देह नहीं है।

कार्यकारणभावेन तिष्ठामि सर्वदेहिषु।
यां विना अणुमेकं च न स्थीयते कदाचन।।२०।।

समस्त देहियों में मैं कार्य एवं कारणरूप से स्थित हूँ जिसके बिना अणुमात्र भी कदापि रह नहीं सकता है।

स्थितिर्हि जड़जीवानां नास्ति त्वखिलमण्डले।
अहं तत्रानन्तरूपा विद्ये सदा स्वयम्भुवा।।२१।।

मेरे रहित इस समस्त संसार में अचेतन जड़ जीवों की सत्ता नहीं है। मैं उनमें सर्वदा अनन्त रूपों को धारण करके रहती हूँ।

पंचेन्द्रियप्रभावेण यो न तिष्ठति वेदवित्।
जिह्वादन्तविहीनेन नामानं घोषितं तदा।।२२।।

जो वेदों के ज्ञाता तथा श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण आदि पंच ज्ञानेन्द्रियों से प्रभावित नहीं रहता है, वह जिह्वा एवं दन्त से रहित होकर मेरे नाम को उस समय जपता रहता है।

हृन्मध्ये योगमार्गेण मन्त्रस्तु यः सदा जपेत्।
मायामेतां परित्यज्य अष्टैश्वर्यमवाप्यते।।२३।।

जो मनुष्य हर समय योगमार्ग से हृदय में मेरे मन्त्र का जप

करता है, वह उस सांसारिक माया को छोड़कर अणिमा, लघिमा, प्राकाम्यादि अष्ट ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है।

मन्त्रयन्त्रबलेनैव केनापि न निबध्यते।
मन्त्रादूर्ध्वं स्थिता चाहं ते सर्वे मद्वशानुगाः।।२४।।

मैं किसी के भी द्वारा मन्त्र तथा यन्त्र के बल से बद्ध नहीं हो सकती। मैं मन्त्रों से ऊपर स्थित हूँ। अन्य सब मेरे अधीन हैं।

देवतानां मातृरूपा योगिनां लयकारिणी।
ज्ञानिनां ज्ञानदात्री च विद्यार्थी जड़नाशिनी।।२५।।

मैं देवताओं की मातृरूपा, योगियों को योगसिद्ध कराने वाली, ज्ञानियों को ज्ञान देने वाली एवं विद्यार्थियों के अन्धकार, तमस् गुणोत्पन्न जड़ता को नाश करने वाली हूँ।

मनोवाक् पादपाणी च कर्मेन्द्रियाणि पंच च।
सङ्कलयामि सततं प्रकृतिस्तत्त्वरूपधृक्।।२६।।

प्रकृति तत्त्व को धारण करती हुयी मैं मनस्, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ आदि इस प्रकार पंच कर्मेन्द्रियों का सर्वदा सङ्कलन करती हूँ।

मुकुरेण यथा लोकैः दृश्यते स्वमुखं परम्।
मन्त्रादर्शबलेनैव क्रियते ब्रह्मदर्शनम्।।२७।।

जिस प्रकार लोग दर्पण के द्वारा अपना मुख देखते हैं, उसी प्रकार मन्त्ररूपी दर्पण के बल से साधक परम ब्रह्म को देखता है।

बाह्यसत्तास्वरूपेण यथापुष्पं सुशोभितम्।
अन्तर्निहितशक्तिश्च न दृश्यते कदाचन।।२८।।
तथैव मम रूपं तु न लक्ष्यते द्विलोचने।
स्पर्शशक्तिबलेनैव स्पृशामि सर्वहृत्स्थलम्।।२९।।

जिस प्रकार बाह्य सत्ता के रूप से पुष्प सुशोभित होता है, उसकी अन्तर्निहित शक्ति कदापि दिखाई नहीं देती है। ठीक उसी तरह दोनों आखों से मनुष्य मेरे रूप को नहीं देख सकता; परन्तु मैं स्पर्श शक्ति के प्रभाव से सबके हृदयस्थल को स्पर्श करती रहती हूँ।

गार्हस्थ्यधर्मनिखिलं मातृमित्रादिसेवनम्।
समं संयमतां नीत्वा समाजे परिचाल्यते।।३०।।

मैं अपनी शक्ति से समस्त गार्हस्थ्य धर्म एवं माता-पिताओं की सेवा को समान भाव से संयमता को लेकर समाज में परिचालन करती हूँ।

मन्त्रं देवार्चनं वापि यो न जानाति कश्चन।
स च मद्दर्शनं लब्ध्वा ब्रह्मचर्यमवाप्तवान्।।३१।।

जो कोई भी मनुष्य मन्त्र अथवा देवार्चन को भी नहीं जानता है, वह मेरा दर्शन करके ब्रह्मचर्य को प्राप्त करता है।

मनोवाक्चक्षुभिर्हृद्भिः न कथ्यते न दृश्यते।
यस्याः सम्बन्धमतुलं न वर्ण्यते तु केनचित्।।३२।।

जिसके सत्य स्वरूप को मनस्, वाक्, चक्षु, हृदय प्रभृति से न कहा जा सकता है न देखा जा सकता है, और न ही कदापि वर्णन किया जा सकता है।

सर्वकार्येषु निर्लिप्तः मच्चिन्ता यः करोति च।
मत्तः प्राप्नोति मुक्तिं स सिद्धिं शान्तिं तथैव च।।३३।।

जो साधक समस्त कार्यों से निर्लिप्त होकर सर्वदा मेरा चिन्तन करता है, वह मेरे द्वारा मुक्ति, सिद्धि तथा शान्ति को प्राप्त करता है।

आत्मज्ञानी च मत्सत्ताबलेन स्वात्मसंयमम्।
निग्रहमिन्द्रियाणाञ्च कृत्वा दुःखैर्विमुच्यते।।३४।।

और भी; वह आत्मज्ञानी साधक मेरी सत्ता के वल से अपनी आत्मा एवं समस्त इन्द्रियों का संयमन करके दुःख और कष्ट से मुक्ति को प्राप्त करता है।

सत्यस्य ज्ञानमार्गेषु ज्ञायते च त्रिकालकम्।
तद्भावभावितं रूपमात्मदर्शनमेव च।।३५।।

वह आत्मज्ञानी साधक सत्यस्वरूपक उस ज्ञान मार्ग में अपने

भूत, भविष्य और वर्त्तमान तथा उस शक्ति के चिन्तित रूप एवं आत्मदर्शन का साक्षात्कार करने में समर्थ होता है।

य एवं मम सूक्ष्मत्वं जानाति साधकोत्तमः।
सोऽपि नूनं लभेन्नित्यमन्तर्यामित्वं निश्चयम्।।३६।।

इस प्रकार पण्डित साधक मेरा सूक्ष्म स्थित्यात्मक इस ज्ञान को साक्षात् जान कर वह निश्चित ही अन्तर्यामित्व को अर्थात् समस्त लोगों के मनोगत भाव को प्राप्त कर जाता है।

विशेष– अभिप्राय यह है कि इस प्रकारक आत्मज्ञान लब्ध साधक अन्तर्यामित्व गुण को प्राप्त कर सबके मन के अन्दर उत्पन्न होने वाले भाव को जानने में समर्थ हो जाता है।

दैवीशक्तिसमानीय स्वेच्छानुसारि कर्म च।
तूर्णं साफल्यमायाति सर्वारम्भेषु तत्परम्।।३७।।

वह विज्ञ साधक दैवी शक्ति का लाभ करके अपनी इच्छानुसार कर्मों का अनुष्टान करके समस्त प्रकार के कार्यों में अतिशीघ्र सफलता को प्राप्त करता है।

द्विजाः मन्मन्त्रमानीय त्रिसन्ध्यासु जपन्ति च।
प्रतिष्ठामात्मनि प्राप्य परकल्याणमर्प्यते।।३८।।

जो ब्राह्मण मेरे मन्त्र को लेकर त्रिसंध्याओं में जप करता है; वह अपनी प्रसिद्धि को पाते हुये दूसरों के कल्याण-निमित्त भी अर्पण करता है।

मयि समर्प्य तत्सर्वं ममान्तःकरणे सदा।
भूताः जीवगणास्तावत् चिन्त्यतेऽस्मन्निदर्शनम्।।३९।।

ब्राह्मण मेरे मन्त्र को त्रिसंध्या में जप करते हुये मुझे समर्पण करके हमेशा मेरे अन्तःकरण में रहते हैं। समस्त भौतिक जीवगण मेरे दर्शन की अभिलाषा करते हैं।

समाधियोगं तमहं ददामि स्वात्ममुक्तिकम्।
सत्त्वरं सिद्धिमाप्नोति परमं हंस एव च।।४०।।

उस साधक को स्वमुक्ति-हेतु समाधि योग को मैं प्रदान करती हूँ। वह सर्वदा परम हंस की सिद्धि को प्राप्त करता है।

स्वाध्यायेन च सत्सङ्गैर्विद्यावन्तश्च सर्वदा।
कर्मसु तत्पराः सन्तः सतर्कत्वमवाप्यते।।४१।।

विद्वान् साधक स्वाध्याय एवं सत्सङ्ग से सर्वदा श्रेष्ठ कर्मों में रहते हुए सतर्कता को धारण करता है।

अभिप्राय यह है कि जब साधक श्रीगीता, श्रीभागवत, स्मृतिशास्त्र आदि के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अवलम्बन करता है तब वह उचित तथा अनुचित का ज्ञान करते हुए परमसिद्धि के मार्ग में अग्रसर होता है। इस समय वह अपने लक्ष्यभूत परमसिद्धि मार्ग से च्युत- स्खलित नहीं हो पाता है। इस प्रकार वह अनायास ही स्वकीय लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

मधुरं सरलं नित्यमात्मज्ञानाभिवर्द्धनम्।
सर्वे ममोपासकाश्च कृतकार्या भवन्ति वै।।४२।।

मेरे समस्त उपासक मधुर, सरल, नित्य ज्ञान को बढ़ाते हुए सफलकार्य होते हैं।

दीर्घसूत्री मन्दबुद्धिः जनाः शठादयस्तथा।
मम पूजननैपुण्यमवाप्य शीघ्रमेव च।।४३।।
श्रेष्ठत्वं लभते तावन्नम्रसौहार्दमेव च।
सौजन्यगुणसम्पन्नं प्रसन्नोदारपूर्वकम्।।४४।।

दीर्घसूत्री, मन्दबुद्धि, शठता आदि गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति आदि मेरी पूजाविधि को प्राप्त कर अत्यन्त शीघ्र ही श्रेष्ठत्व, नम्र, सौहार्द्रता, उदारपूर्वक प्रसन्नता तथा सौजन्यगुण-सम्पन्नता को प्राप्त करता है।

सर्वशत्रुगणस्तस्य मित्रत्वं याति सत्त्वरम्।
चतुराः कर्मशीलाश्च शक्तिमन्तो भवन्ति वै।।४५।।

उसके समस्त शत्रुगण झटिति मित्र हो जाते हैं। वे चतुर, कर्मशील तथा भक्तिमान् हो जाते हैं।

ऋषय ऊचुः

तत्त्वरूपा तु या देवी कथं तामभयामपि।
विश्वामित्रवशिष्ठौ च कथं शापं प्रयच्छताम्।।४६।।

जो देवी तत्त्वस्वरूपा है, उस अभयदात्री गायत्री जी को विश्वामित्र और वशिष्ठ किसलिए अभिशाप दिये थे।

नारद उवाच

एकदा तौ च ब्रह्मर्षी गायत्री वेदमातरम्।
मर्त्त्यभूमिं समानेतुं तपस्यमकुरुतामुभौ।।४७।।

नारद जी ने कहा- एक समय वे दोनों ब्रह्मर्षि वेदमाता गायत्री जी को मर्त्त्यभूमि में लाने के लिए तपस्या कर रहे थे।

शीते जले प्रविश्याग्निं सन्तप्यापि दिने दिने।
एवं तीक्ष्णतपस्याभिर्गायत्री नागता यदा।।४८।।

शीत ऋतु में जल में प्रवेश करके, निदाघ ग्रीष्म में मध्याह्न समय में अग्नि का प्रज्वलन करके, इस प्रकार कठोर तपस्या करने पर भी जब गायत्री नहीं आयी।

मन्त्रं निष्फलमायातु कथितौ मुनिसत्तमौ।
एवं ज्ञात्वा देवगणाः वीतस्पृहोऽभवत्ततः।।४९।।

उस समय गायत्री को न आते देखकर दोनों मुनिश्रेष्ठ 'मन्त्र निष्फल हो जाए' इस प्रकार कहे थे। देवतागण यह जान कर वीतस्पृह हो गये।

इन्द्रादिदेवताः सर्वे सभक्तिकमृषिद्वयम्।
सनम्रवचनं तावत् ऊचुः कौपीनधारिणौ।।५०।।

इन्द्रादि समस्त देवगण कौपीनधारी उन दोनों ऋषियों से भक्ति के साथ इस प्रकार नम्र वचन बोले।

भो मुनी! ब्रह्मविदौ वा त्रिकालज्ञौ जितेन्द्रियौ।
जगन्मातुर्गायत्र्याश्च शापं मोचय सत्त्वरम्।।५१।।

देवताओं ने कहा- हे ब्रह्मज्ञानी, त्रिकालज्ञ, जितेन्द्रिय मुनिद्वय!

आप जगन्माता गायत्री जी के प्रति दिये हुये शाप का मोचन करें।

वशिष्ठविश्वामित्रावूचतुः

हे देवि! तव मन्त्रं च सफलं भवतु सदा।
मर्त्यलोकहितार्थाय आगच्छ भूमिमण्डलम्।।५२।।

उसके बाद वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ऋषियों ने कहा कि हे देवि! आपका मन्त्र सर्वदा सफल हो और मर्त्यलोक के मङ्गल के निमित्त आप भूमण्डल पर आयें।

उपस्थिता स्वयं देवी नैमिषारण्यमध्यगा।
विलोक्य ऋषिवृन्दश्च स्तुतिं चकार सत्त्वरम्।।५३।।

स्वयं देवी नैमिषारण्य में उपस्थित हुई थी और उनको देखकर समस्त ऋषिगणों ने साक्षात् उनकी स्तुति की थी।

जगत्प्रपूज्ये सुरलोकवन्द्ये
देवीषु मान्ये नरसिद्धवन्द्ये!।
करीन्द्रपृष्ठे कमलासनस्थे!
नमोऽस्तु ते देवि! भटाग्रगण्ये!।।५४।।

ऋषियों ने कहा- हे जगत्पूज्या, देवपूज्या, देवीश्रेष्ठा, सिद्ध नरों से पूजनीया, करीन्द्रपृष्ठासना, वीराग्रगण्या देवी! आपको नमस्कार है।

ब्रह्मतेजोविधात्री त्वमज्ञानां ज्ञानदायिनी।
ऋषीणां धैर्यदात्री त्वं विद्यार्थीवाक्प्रदायिनी।।५५।।

आप ब्राह्मणों के लिए शक्ति देने वाली, अज्ञानियों के लिए ज्ञानदात्री, ऋषियों के लिए धैर्यदात्री तथा विद्यार्थियों के लिए विद्या की प्रकाशिका हो।

निवेदयामो वै देवि! वयं नम्राः सभक्तिकम्।
मर्त्यलोकं समागच्छ सुखसमृद्धिकारकम्।।५६।।

हे देवि! हम लोग भक्ति के साथ नम्र होकर निवेदन करते हैं कि आप सुख-समृद्धिकारक मर्त्यलोक में आओ।

नारद उवाच

अस्त्विति मुग्धवचनं प्रोच्य देवी स्वयम्भुवा।
गतिमुक्तिप्रदात्री च भूर्भुवःस्वरिति स्थिता।।५७।।

नारद जी ने कहा कि स्वयं आविर्भूता, गति तथा मुक्ति को प्रदान करने वाली, भूः भुवः स्वः स्वरूप से प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाली गायत्री देवी ने 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहा।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः वशिष्ठ-विश्वामित्रशापविमोचनं नाम पंचमोऽध्यायः

अथ षष्ठोऽध्यायः

(समाधियोगवर्णनम्)

ऋषय ऊचुः

याऽष्टसिद्धिपरा देवी पुण्यापुण्यकरी तथा।
ज्ञानप्रदा ज्ञानगम्या गूढ़तत्त्वाधिकारिणी।।१।।

ऋषियों ने कहा- हे नारद जी! जो देवी अष्टसिद्धियों से युक्ता, श्रेष्ठा, ज्ञान को देने वाली, ज्ञान के द्वारा प्राप्त होने वाले गूढ़तत्त्व की अधिकारिणी है (उस देवी के विषय में हम लोगों से कहिये)।

नारद उवाच

ऋषयः शृणुत तावत् गायत्रीं चाष्टसिद्धिदाम्।
यया शक्त्या प्रभावेण शिवस्त्रिकालदर्शकः।।२।।

नारद जी ने कहा- हे ऋषिगण! आप लोग अष्टसिद्धियों को प्रदान करने वाली उस गायत्री जी के विषय में सुनो, जिसकी शक्ति के प्रभाव से श्री शिव जी त्रिकालदर्शी हुये हैं।

जड़चेतनयोर्मध्ये विद्यमानां स्वयम्भुवाम्।
वद त्वेकैकमस्मांश्च तस्याः माहात्म्यमुत्तमम्।।३।।

सजीव और निर्जीव पदार्थों में विद्यमाना स्वयम्भुवा उस देवी के श्रेष्ठ माहात्म्य को हम लोगों को कहो से (वस्तुतः यह प्रश्न ऋषियों ने नारद जी पूछा था)।

प्राणायामं प्रथमं च न्यासं तु तदनन्तरम्।
शुद्धपूतत्त्वभावेन तां जपेच्च चतुर्थकम्।।४।।

पहले प्राणायाम, उसके बाद न्यास करके शुद्ध एवं पवित्र होकर चतुर्थ में जप करना चाहिए।

आत्मदर्शी भवेन्नित्यं सर्वेन्द्रियविनिग्रहम्।
तत्त्वज्ञानं दर्शनं च दुःखशोकविवर्जितम्।।५।।

जो मनुष्य इस प्रकार जप करता है, वह आत्मदर्शी समस्त इन्द्रियों को जय करता हुआ दुःख-शोक आदि छोड़कर तत्त्वज्ञान का दर्शन करता है।

स्थितप्रज्ञत्वमास्थाय भूतानां जयकृत् सदा।
संसारासारतां मत्वा सर्वक्लेशात् प्रमुच्यते।।६।।

वह साधक स्थितप्रज्ञता को प्राप्त करके पञ्चभूतों को जीत कर संसार की असारता को जान कर समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाता है।

समाधियोगमास्थाय देवतत्त्वनिदर्शकः।
मायामोहं परित्यज्य मन्त्रं जपति तन्मयम्।।७।।

देवता तत्त्व को देखने वाला वह साधक समाधियोग को धारण कर माया-मोह से दूर रह कर उस मन्त्र का चिन्तन करता है।

आत्मसिद्धिं च प्राप्नोति निर्वाणं चापि दुर्लभम्।
ब्रह्मलोकं समागत्य परं ब्रह्मणि तिष्ठति।।८।।

वह साधक स्वयं आत्मसिद्धि और निर्वाण को प्राप्त कर ब्रह्मलोक को प्राप्त करके परंब्रह्म में वास करता है।

नियन्त्र्य पंचतत्त्वं च यस्तु ब्रह्मज्ञसाधकः।
आत्मग्लानिं न लभते केवलं भूर्भुवःस्वरोम्।।९।।

जो ब्रह्मज्ञानी साधक पंचतत्त्वों को नियन्त्रित करके भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सोऽहंसः- इस प्रकार जप करता है वह आत्मग्लानि को प्राप्त नहीं करता है।

विविधसिद्धिमार्गेण गायत्रीं ध्यायति सदा।
स द्विजोत्तम एवापि सर्वश्रेष्ठश्च भूतले।।१०।।

विभिन्न प्रकार के सिद्धिमार्ग से जो गायत्री का ध्यान करता है, वह ब्राह्मणश्रेष्ठ इस पृथिवी पर सर्वश्रेष्ठ होता है।

भूलोकस्वर्गलोकैस्तु पातालतलवासिभिः।
सर्वे निष्कामभावेन सावित्रीं चिन्तयन्ति हि।।११।।

पृथिवी, स्वर्ग और पाताल लोक में रहने वाले सूर्य के द्वारा आवृत्त उस गायत्री देवी का निष्काम भाव से सभी चिन्तन करते हैं।

ज्ञानसिद्ध्या तीक्ष्णबुद्धिः तीव्रस्मरणशक्तिकम्।
भूतभव्यप्रत्यक्षं च सुकृतं पूर्वजन्मनाम्।।१२।।
जीवानां च मनोभावं शास्त्राणां सारसंग्रहम्।
प्राप्नोति पुरुषश्रेष्ठः वैराग्यं भावनिःस्पृहम्।।१३।।

वह श्रेष्ठ पुरुष ज्ञान-सिद्धि के द्वारा तीक्ष्ण बुद्धि, तीक्ष्ण स्मरण शक्ति, अतीत-अनागत और वर्त्तमान, पूर्व जन्म में उत्पन्न सुकृत, जीवों के मनोभाव, शास्त्रों के सारतत्त्व प्रभृति से निःस्पृह होकर वैराग्यावस्था को प्राप्त करता है।

सूक्ष्मतनुत्वमाधाय तपःसिद्ध्या स्वयं नरः।
क्षुधां तृष्णां परित्यज्य पूर्णसिद्धिमवाप्यते।।१४।।

स्वयं मनुष्य तपःसिद्धि के द्वारा सूक्ष्म शरीर को धारण करते हुए भूख, प्यास आदि को छोड़कर पूर्ण सिद्धि का लाभ करता है।

योगबलेन गायत्रीं यो योगी भजते सदा।
स ब्रह्मदर्शी भूत्वा च वेदविद्यामवाप्यते।।१५।।

जो योगी योगवल से सर्वदा गायत्री जी की पूजा करता है, वह ब्रह्मदर्शी होकर वेदविद्या को प्राप्त करता है।

योगसिद्धिप्रभावेण निर्लोभः सर्वकर्मसु।
ज्ञानप्रदो भवेद् विप्रः मृत्युर्भीतिर्न विद्यते।।१६।।

वह ब्रह्म कर्म के आचरण करने वाला योगी योगसिद्धि के प्रभाव से समस्त कर्मों में लोभशून्य हो जाता है और वह ज्ञानप्रदाता होता है। उसको मृत्युभय नहीं रहता है।

मनुष्याणां शरीरे तु भूर्भुवःस्वाक्षरात्मकम्।
त्रिधैव तिष्ठति नित्यं पादहृदयमस्तके।।१७।।

मनुष्य के शरीर में पुण्यस्वरूप वाला भूः, भुवः, स्वः- यह तीन पाद, हृदय तथा मस्तक पर सर्वथा तीन प्रकार से रहते हैं।

प्रातः पादं च विज्ञेयं हृदि मध्याह्नमेव च।
सायं च मस्तकं प्रोक्तं तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः।।१८।।

उस स्वयं प्रसूता गायत्री जी की प्रातः में पाद, मध्याह्न के समय में हृदय एवं सन्ध्या में मस्तक- इस प्रकार तीन अवस्था कही गयी है।

यो द्विजः प्रातर्मध्याह्ने सायाह्ने कर्मतत्परः।
ब्रह्माविष्णुरुद्रशक्तिं गायत्रीं जपते सदा।।१९।।
ज्ञानजाग्रतभावं च जायते तस्य सत्त्वरम्।
अन्तकाले च मोक्षं तु लभते नात्र संशयः।।२०।।

जो ब्रह्म कर्म का आचरण करने वाला साधक प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में कर्मतत्पर होकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र शक्तिरूपा गायत्री जी का ध्यान करता है, उस साधक को अतिशीघ्र ज्ञानलाभ होता है और अन्तिम समय में मोक्षलाभ होता है; इसमें सन्देह नहीं है।

दन्तजिह्वां च संस्पृश्य वकवत् ध्यायति स्वयम्।
उद्योगी पुरुषः सो वै प्राप्नोति सकलं सुखम्।।२१।।

जो उद्योगी पुरुष स्वयं दन्त एवं जिह्वा को स्पर्श न करते हुये वगुले की भाँति ध्यान करता है, वह समस्त प्रकार के सुखों को पाता है।

जनानां दुःखक्लेशं च क्षेत्रसिद्धया विनश्यति।
वरदाभयदात्री च प्रसन्ना भवति सदा।।२२।।

क्षेत्रसिद्धि द्वारा लोगों का दुःख, कष्ट दूर होता है और वह वरदायिनी अभयदात्री बनकर हमेशा प्रसन्न रहती है।

कृषकः स्वहलेनैव भूमिं तत्परः कर्षति।
बीजं वप्त्वा यथायोग्यं शस्यमाप्नोति सन्ततम्।।२३।।

कृषक जिस प्रकार अपने लाङ्गल से पृथिवी का भलि-भाँति

कर्षण करता है, उसके बाद बीजवपन करके यथायोग्य शस्य पाता है।

तनुक्षेत्रं परिमृज्य तथा पूतं करोति यः।
स नूनं मोक्षमाप्नोति सम्प्राप्य वेदमातरम्।।२४।।

उसी प्रकार जो साधक शरीररूपी क्षेत्र का भलि-भाँति कर्षण करके पवित्र करता है, वह निश्चित ही वेदमाता गायत्री को प्राप्त होकर मोक्ष गति को पाता है।

यः साधु ब्रह्मगायत्रीं सन्तोष्य देवसिद्धिदाम्।
लब्ध्वा निष्कामवत् तिष्ठेद् गृहजंजालकर्मणि।।२५।।

जो साधु पुरुष देवताओं की सिद्धिदात्री ब्रह्मगायत्री को सन्तुष्ट करता हुआ रहता है, वह सांसारिक बन्धनों में निष्काम भावों को प्राप्त होकर रहता है।

तस्याः शक्तिप्रभावेण वशीभवन्ति सर्वदा।
यक्षरक्षपिशाचांश्च हिंस्रव्याघ्रादिजन्तवः।।२६।।

उस गायत्री जी की शक्ति के प्रभाव से यक्ष, राक्षस, पिशाच, हिंस्र व्याघ्र प्रभृति पशु उसके वशीभूत होकर रहते हैं।

चक्रं सुप्तां कुण्डलिनीं उत्थापयति यो नरः।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य सिद्धो भवति सर्वथा।।२७।।

जो मनुष्य सुप्त कुण्डलिनी और चक्रों को जाग्रत करता है। वह सर्वदा सिद्ध होता है और उस को मन्त्रसिद्धि हो जाती है।

षड्रिपूणां प्रवृत्तेश्च यो निवृत्तिं च गच्छति।
स नरः पुरुषः श्रेष्ठः घोरसंसारसागरे।।२८।।

जो पुरुष भयङ्कर संसार सागर में काम, क्रोध आदि षड्महारिपुओं की प्रवृत्ति से निवृत्ति पथ को ग्रहण करता है, उसे श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है।

पंचभूतानि संयम्य यो शरीरं सुसाधयेत्।
दृष्ट्वैव सकलाः रोगाः क्षणेनैव त्यजन्ति तम्।।२९।।

जो पुरुष पंचभूतों का संयमन करके शरीर का साधन करता है, उसे देखकर सकल रोग उसे छोड़कर क्षणमात्र में ही उससे दूर चले जाते हैं।

तस्य चालौकिकीं शक्तिं दृष्ट्वा दिव्यबलं तथा।
देवाश्च चिन्तिताः सर्वे ज्ञात्वा सिद्धिं मुहुर्मुहुः।।३०।।

उसकी अलौकिक शक्ति तथा दिव्य बल को देखकर और सिद्धि को जान कर समस्त देवता गण बारम्वार चिन्तित होते हैं।

सोऽनर्गलं प्रभाषेत सभासु यज्ञकर्मसु।
स्पर्शमात्रेण तत्खाद्यं स्वादुर्भवति तत्क्षणात्।।३१।।

वह सभाओं में तथा यज्ञकर्मों में धाराप्रवाह भाषण देता है। उसके स्पर्शमात्र से खाद्य क्षणमात्र में स्वादिष्ट हो जाता है।

स्वल्पखाद्यं बहुभ्यश्च दत्त्वा तोषयते सदा।
लभते अमृतत्वं च स्वाङ्गं सौष्ठवसुन्दरम्।।३२।।

वह स्वल्प खाद्य देकर बहुतों को सन्तुष्ट कर देता है और सुन्दर अङ्गसौष्ठव को प्राप्त कर अमरत्व का लाभ करता है।

दीर्घायुश्च भवेत्तस्य कायाकल्पं मनोहरम्।
दुष्टगणानभिशाप्य नाशयत्यात्मतेजसा।।३३।।

वह दीर्घायु होता है तथा उसका शरीर अत्यन्त मनोहर हो जाता है। वह अपने आत्मतेजस् से दुष्टगणों को अभिशाप देकर नष्ट कर देता है।

सज्जनेभ्याशिषं तस्माद्ददाति सुखशान्तिकम्।
स्वेच्छया मृतके जीवे विशति तदनन्तरम्।।३४।।

वह सज्जनों को सुख-शान्तिपूर्वक आशीर्वाद देता है एवं उसके बाद अपनी इच्छा से निर्जीव जीव में प्रवेश करता है।

पंचप्राणान् वशीकृत्य कार्यसिद्धिं विधाय वै।
मायावेष्टितकर्मभ्य ऊर्ध्वं तिष्ठति सः नरः।।३५।।

वह व्यक्ति पंच प्राणों को वशीभूत करके कार्यसिद्धि को पाकर माया द्वारा वेष्टित कर्मों से ऊर्ध्व लोक में रहता है।

आद्याशक्तिप्रसादेन भ्रमते सचराचरम्।
जले जलत्वमास्थाय वह्नावग्नित्वतैजसम्।।३६।।

आद्या शक्ति गायत्री जी के प्रसाद से सचराचर जगत् में भ्रमण करते हैं। जल में जल और अग्नि में तेजीयान् अग्निरूप को धारण करते हैं।

वायुषु वायुनो धृत्वा पृथिव्याः सर्वजन्तुषु।
सर्वेषु भूतगणेषु स्वात्मशक्तिं वितन्वति।।३७।।

पृथिवी के समस्त प्राणियों के मध्य वायु के रूप को धारण करते हुये समस्त भूतगणों में अपनी आत्मशक्ति का विधान करता है।

अष्टसिद्धिं लभन्ते च गायत्रीं सिद्धिदात्रिकाम्।
ये वदन्ति भजन्ते वा पूजयन्ति समन्ततः।।३८।।

जो हर तरह से सिद्धिदात्री गायत्री जी का भजन, पूजन, तद्विषयक आलोचना करते हैं, वे अष्टसिद्धि-लाभ करते हैं।

ये जुह्वन्ति ध्यायन्ति समाधिस्थितिपूर्वकम्।
ते लभन्ते महैश्वर्यं ब्रह्मज्ञानविदांवराः।।३९।।

जो समाधि योगपूर्वक सर्वदा गायत्री जी का ध्यान एवं हवन करते हैं- वे ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ अष्टैश्वर्य को प्राप्त करते हैं।

योगज्ञानप्रदां देवीं योगेन्द्रमतिहारिणीम्।
सर्वशास्त्रेषु कुशलां ब्रह्माणीं ब्रह्मवादिनीम्।।४०।।
मन्त्रेषु प्रणवं प्रोक्तामात्मजीवस्वरूपिणीम्।
मायां प्रकृतिरूपां च नमामि निखिलेश्वरीम्।।४१।।

योगज्ञान को प्रदान करने वाली, योगी तथा श्रेष्ठों की बुद्धि को हरने वाली, समस्त शास्त्रों में निष्णात, ब्रह्माणी ब्रह्मतत्त्व को कहने वाली, मन्त्रों में जिसे प्रणव कहा गया है, आत्मा और जीव स्वरूपिणी माया प्रकृतिस्वरूपा निखिल विश्व की स्वामिनी उस गायत्री देवी को नमस्कार करता हूँ।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
समाधियोगवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

(मन्त्रवर्णनम्)

ऋषय ऊचुः

सर्वात्मसु स्थिता देवि! सर्वानन्दप्रदायिनि!।
भवत्याः पदारविन्दं नमामो वै निरन्तरम्।।१।।

ऋषियों ने कहा- हे समस्त आत्माओं में स्थिता एवं सबको आनन्द देने वाली! आपके पद्मपाद में हमलोग सर्वदा नमस्कार करते हैं।

तृणेषु काष्ठद्रव्येषु सत्सु प्राणिगतेषु च।
विद्यसे शक्तिभावेन मातृरूपेण संस्थिता।।२।।

आप तृण, काष्ठादि द्रव्य, समस्त प्राणियों में मातृशक्ति रूप से विद्यमान हो।

किं तावत् मन्त्रमानीय पूजयन्ति च तां द्विजाः।
कथय भो मुनिश्रेष्ठ! एकैकश्लोकसंख्यया।।३।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद! ब्राह्मण किस मन्त्र को ग्रहण करके उनकी पूजा करते हैं, उसे एक एक श्लोकक्रम से कहो।

नारद उवाच

शृणुताहं वदिष्यामि मन्त्रं पूजनकर्मणि।
ये तु भक्त्या वदिष्यन्ति नूनं प्राप्स्यन्ति तत्फलम्।।४।।

नारद जी ने कहा- हे ऋषिगण! आप लोग सुनें हम गायत्री जी के मन्त्र एवं पूजाविधि को कहेंगे। उसका जो पाठ करेंगे, वे निश्चय ही फल-लाभ करेंगे।

पप्रच्छ एकदा ब्रह्मा नारायणमनादिजम्।
केन मन्त्रेण गायत्री शीघ्रं तुष्टा भवेदिह।।५।।

एक बार प्रजापति ब्रह्मा जी ने नारायण से पूछा कि किस मन्त्र से गायत्री 'शीघ्र सन्तुष्टा' होती है।

नारायण उवाच

भो ब्रह्मन्! शृणु गायत्र्याः मन्त्रमत्यन्तमोक्षदम्।
येन सिद्धयति सद्विद्या त्रिकालज्ञो भवेन्नरः।।६।।

नारायण जी ने कहा- हे ब्रह्मा जी! आप गायत्री जी के मोक्ष-प्रदानकारी मन्त्र को सुने। जिसके द्वारा मनुष्य विद्या-सिद्धि लाभ करके त्रिकालज्ञ होता है।

ॐकारौजस्विनि मातः ॐमित्यक्षरवासिनि!।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै श्रियै नमः।।७।।

हे गायत्री माता! आप ह्रकार के तेजस् से ओजस्विनी हो। आप ॐ इस अक्षर में वास करती हो। आप वेदमाता, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली तथा श्री अर्थात् लक्ष्मी हो। इस प्रकार स्वरूप वाली आपको नमस्कार है।

भूरूपिण्यै भ्रान्तिहन्त्र्यै भीमशक्त्यै नमो नमः।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।८।।

हे माता! आप पृथिवीस्वरूपिणी, भ्रान्तिनाशिनी, भयङ्कर शक्तिस्वरूपिणी, पृथिवीकर्त्री, वेदमाता, वेद के तत्त्व को देने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली हो। आपको नमस्कार है।

भुवनजनपूज्या त्वं भवानी भवयोगिनी!।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।९।।

हे माता भवानि! आप पृथिवीस्थ लोगों की वन्दनीया, शिव जी की प्रिया, शिवयोगिनी, वेद-जननी, वेदतत्त्व को देने वाली, वेद विद्या के तत्त्व को तत्त्वतः कहने वाली हो। आपको नमस्कार है।

बन्धूकपुष्पवर्णायै वैकुण्ठपुरसंस्थिते।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१०।।

बन्धूक पुष्प-सदृश रूप वाली, वैकुण्ठ में निवास करने वाली, वेदों की मातृस्वरूपा वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

स्वतेजसा जगत्सर्वं सूक्ष्मरूपेण संस्थिता।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।११।।

हे गायत्री! आप अपनी तेजस् से समस्त जगत् में वास करती हो। अतः वेदतत्त्व की उत्पादिका, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

मन्त्रमयी महारूपा मनोविवेकसंस्थिता।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१२।।

हे गायत्री! आप मन्त्रस्वरूपा नाना रूप से मन और विवेक में वास करती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

हरप्रिया हृदभया हृजलयाधिवासिनी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१३।।

हे गायत्री! आप महादेव जी की प्रिया हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

जगद्धात्र्यै ज्वालामुख्यै जनदुःखापहारिण्यै।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१४।।

हे देवि! आप जगत् का आधार हो। आप हमेशा तेजोमयी हो तथा लोगों के दुःखों को हरने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

नरकार्णवतारिण्यै नारायण्यै निरन्तर्यै।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१५।।

हे माता! आप नरकरूप समुद्र से उद्धार करने वाली तथा नारायण जी की प्रिया हो। आपकी सत्ता हमेशा रहने वाली है। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

तमःसत्त्वरजोहन्त्री तुलसीतत्त्वरूपिणी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१६।।

हे जगन्माता! आप तीनों गुणों का विनाश करने वाली, प्राणि जगत् में तुलसी तत्त्वस्वरूपा हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

परंब्रह्मणि शक्तिश्च परंब्रह्मपरायणी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१७।।

हे देवि गायत्री! आप परंब्रह्म में शक्ति स्वरूपा तथा परंब्रह्म के प्रति नित्य अनुरक्ता हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

समस्तहृदमध्यस्था सर्वाभीष्टप्रदायिनी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१८।।

हे देवि! आप सबके हृदय में वास करती हो एवं सबकी कामनाओं के फल को प्रदान करती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

त्यक्त्वा सर्वस्थलं मातस्तिष्ठसि रविमण्डले।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।१९।।

हे माता! आप संसार के समस्त जगहों को छोड़कर सूर्यमण्डल में रहती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

तद्भाविता सदा देवि! तत्त्वगुणार्थदर्शिका।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२०।।

हे देवि! आप सर्वदा नित्य सत्य रूपसे प्रसिद्धा हो। आप संसार के तत्त्वरूप को दिखाती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान

करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

सत्यक्षमादयाशान्तिःसत्त्वेषु परिपूजिता।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२१।।

हे देवि! सत्य, शान्ति, दया, क्षमा आदि गुणों से प्राणियों के द्वारा पूजित हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

विगतेर्ष्या वीतरागा वित्ताभावो न विद्यते।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२२।।

आपकी किसी के प्रति ईर्ष्या नहीं है। वित्त का अभाव भी नहीं है। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

तुल्यातुल्यराहित्ये तुष्टा यज्ञादिपूजने।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२३।।

हे माता! आप सम-विषमता से रहित होते हुये यज्ञादि कर्मों से सन्तोष को प्राप्त करती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

वशीकरोषि स्वशक्त्या ब्रह्मवैश्यादिप्राणिनः।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२४।।

हे देवि! आप अपनी शक्ति के वल से ब्राह्मण, वैश्य आदि वर्णों को वश में करती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

रेणुरूपेण सर्वत्र विद्यमाना विराजसे।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२५।।

हे देवि! आप धूल के रूप से हर जगह विद्यमान हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

निर्लोभी निर्विकल्पा च निश्चिन्ता निर्मला तथा।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२६।।

हे देवि! आप निर्लोभी, रूपातीत और निर्मल हृदय वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

यमनियमसंस्थिता यासु मण्डलवर्त्तिनी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२७।।

हे देवि! आप यम, नियम आदि तथा सूर्यमण्डल में रहती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

भण्डगणास्तु द्रुह्यन्ति भजन्ति साधुसज्जनाः।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२८।।

हे देवि! दुष्ट व्यक्ति आपके साथ द्रोह तथा सज्जन व्यक्ति आपका भजन करते हैं। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

गोरूपेण पृथिव्यां तु गोगोष्ठके च दृश्यते।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।२९।।

हे देवि! आप पृथिवी के गोगोष्ठ में गोरूप से दिखती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

देशे सर्वत्र विभाति देशिकैर्या प्रपूजिता।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३०।।

हे देवि! आप देश के हर जगह शोभा पाती हो। आपकी पूजा देशवासी कर रहे हैं। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली,

वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

ब्रह्माण्डे मन्दिरे भव्ये ब्रह्मरूपत्वधारिणी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३१।।

हे देवि! इस ब्रह्माण्डरूप मन्दिर में ब्रह्म रूप को धारण करने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

संसारे त्वं वेदमाता सद्रूपेण व्यवस्थिता।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३२।।

हे वेदमाता! आप इस संसार में सद्रूप से अवस्थित हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

धीशक्तिर्बुद्धिदानेन धीत्वेन त्वं प्रकीर्त्तिता।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३३।।

हे देवि! आप बुद्धिरूपी शक्तिदान से, बुद्धिरूपी सिद्धि से, बुद्धित्व से प्रतिष्ठित हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

वशिष्ठादिऋषीणां च मनोऽभीष्टप्रपूरिका।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३४।।

हे देवि! मनु, कश्यप, वशिष्ठ आदि ऋषियों के मनोरथ को पूर्ण करने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

ह्रीं बीजं समन्त्रकन्तु त्वां जुहति भूसुरकाः।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३५।।

हे देवि! पृथिवी के समस्त प्राणिगण ह्रीं बीज से सम्पुटित

मन्त्र से हवन आपके लिए करते हैं। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

धीरा बुद्धिप्रदात्री च धीक्षणाभिः स्वयं गुरुः।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३६।।

हे देवि! आप धैर्यशालिनी, बुद्धि प्रदान करने वाली तथा बुद्धि प्रदान कार्यों में स्वयमेव गुरु हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

योजनात् योजने स्थित्वा त्वं ददास्यात्मदर्शनम्।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३७।।

हे देवि! योजन से योजन दूर में अवस्थित होकर आप अपने स्वरूप का दर्शन कराती हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

योषितामग्रगण्या त्वं विद्यसेऽस्मिन् महीतले।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३८।।

हे देवि! आप इस धरातल पर नारियों में अग्रगण्या हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

नक्तं सायं प्रातरेव त्वां नमन्ति निरन्तरम्।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।३९।।

हे देवि! दिन, रात, प्रातः, सायं आपको सभी नमस्कार करते हैं। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

प्रवालमालिका युक्ता प्राणिनां कर्मकारिणी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।४०।।

हे देवि! आप प्रवालमाला को धारण करने वाली तथा प्राणियों

के कर्म को करने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

चौरघ्नी चपलाङ्गी च चण्डमुण्डविनाशिनी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।४१।।

हे देवि! आप चोरों का विनाश करने वाली, चञ्चला तथा चण्ड-मुण्ड का विनाश करने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

दक्षा सर्वेषु कार्येषु दारिद्र्यदुःखहारिणी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।४२।।

हे देवि! आप सभी कार्यों में निपुण तथा दरिद्रों के दुःखों को हरने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

याज्ञिकयागरक्षित्री यमनियमसंस्थिता।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।४३।।

हे देवि! आप याज्ञिकों के यज्ञ की रक्षा करने वाली तथा यम नियमों में रहने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

तड़िदिव चंचला त्वं तपोमण्डपवासिनी।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।४४।।

हे देवि! आप बिजली की तरह चंचला तथा तपस्वियों के मण्डपरूपी हृदय में रहने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

पवित्रां परमेशानीं पापतापनिवारिणीम्।
वेदमात्रे वेददात्र्यै वेदवक्त्र्यै नमो नमः।।४५।।

हे देवि! आप पवित्रा, परमेश्वरी तथा संसार के पापजन्य दुःखों का विनाश करने वाली हो। अतः वेदतत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को प्रदान करने वाली, वेद के तत्त्व को कहने वाली आपको नमस्कार है।

रणाङ्गणे रणप्रिया रक्षोगणविनाशिनी।
रक्षाकर्त्री सतां लोके पूज्या भवति सा सदा।।४६।।

हे देवि! आप युद्धक्षेत्र में युद्धप्रिया हो। राक्षसों की विनाश करने वाली तथा साधुजनों की रक्षा करने वाली के रूप में सदा सर्वदा पूजित हो।

रम्यां राजेश्वरीं दिव्यां रवितेजःसमप्रभाम्।
रमां सतीं च सावित्रीं गायत्रीं प्रणमाम्यहम्।।४७।।

मनोहर रूप वाली, राजेश्वरी, दिव्य शरीरधारी, सूर्य के समान तेजस्वी, रमा, सावित्री सती इस स्वरूप वाली आप गायत्री जी को हम लोग नमस्कार करते हैं।

जगत्सु ये मोहमायां दूरं त्यजन्ति सत्त्वरम्।
कायेन मनसा वाचा नरकं न ब्रजन्ति ते।।४८।।

जो लोग इस संसार में मोह–माया को तन, धन तथा मन से शीघ्रातिशीघ्र दूर छोड़ते हैं, वे लोग नरक नहीं जाते हैं।

शङ्करी सर्वकार्येषु जीवरूपे त्ववस्थिता।
त्रिगुणरज्जुरूपेण आबद्धयति विश्वकम्।।४९।।

आप शङ्करी सभी कार्यों में जीवरूप से निश्चित ही स्थित हो और भी त्रिगुण रज्जु से समग्र विश्व को आबद्ध की हो।

शक्त्या प्राणान् सुसंयम्य श्वासादिकं निरुध्य च।
समाधित्वं समाधत्ते स योगी बुद्धचते बुधैः।।५०।।

शक्ति के अनुसार श्वास–प्रभृति को निरोध कर जो प्राणायाम करके समाधि को प्राप्त करते हैं, उन्हें पण्डित लोग योगी इस नाम से सम्बोधित करते हैं।

वरेण्या ब्रह्मवादिनी ब्रह्मगणविनोदिनी।
विश्वचक्षुर्विश्वबाहुर्विशालवपुशोभिता ।।५१।।

आप गायत्री देवी पूजनीया, ब्रह्मवादिनी, ब्राह्मणों को आनन्द-प्रदायिनी, विश्व के चक्षु:स्वरूपा तथा विशाल शरीर से शोभित हो रहे हो।

दक्षकन्या दूरद्रष्ट्री दिवारात्रिनिवासिनी।
दारिद्र्यदु:खहन्त्री च दयाक्षमाप्रदायिनी।।५२।।

आप दक्षपुत्री, दूरदर्शी, दिन और रात में निवास करने वाली, दारिद्र्य दु:ख को हरण करने वाली तथा दया और क्षमा प्रदान करने वाली हो।

आद्याशक्तिमनिन्द्यां च आयुवर्द्धनकारिणीम्।
आराध्यामादिदेवीं च तां नमामि सुरेश्वरीम्।।५३।।

आद्या शक्ति, अनिन्दनीया, आयु को बढ़ाने वाली, आराध्या, आद्या देवी उस सुरेश्वरी गायत्री जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

पराबीजं शक्तिबीजं कामबीजं तथा परम्।
परात्परां परायणां पावनीं च षडाननाम्।।५४।।

परा बीज, शक्ति बीज और काम बीजस्वरूपिणी, श्रेष्ठतमा, पवित्र-तमा, षण्मुख-विशिष्टा उस गायत्री देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

ज्योतिरूपेण सुव्यक्तां जगत्कर्मविवर्द्धिनीम्।
जनजाग्रतकारिर्णीं मानसहंसरूपिणीम्।।५५।।

ज्योति रूप से रहने वाली, संसार के कर्मों को बढ़ाने वाली, लोगों को जाग्रत कराने वाली, मानस हंसस्वरूपिणी उस गायत्री देवी को मैं नमस्कार करता हूँ।

तिसृषु सन्त्यवस्थासु त्रितापतापमण्डनी।
तरन्ति तव नाम्ना च जगत्तरङ्गिणी सदा।।५६।।

आप तीनों अवस्थाओं में रहकर आध्यात्मिकादि त्रितापों से भूषित हो।। आपके नामजप से इस संसार सागर से मनुष्य पार पा जाता है।

रतिपतेरात्मरूपां राकाचन्द्रविनिन्दिताम्।
दृष्ट्वा दुष्टगणाः सर्वे नाशमायान्ति तत्क्षणम्।।५७।।

रति के स्वामी कामदेव कन्दर्प स्वरूप वाली, पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र को निन्दा करने वाली आपके रूपको देखकर समस्त दुष्टगण उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।

सोऽहं हंसत्वमास्थाय जीवा जपन्ति सर्वदा।
नास्तिका नास्तिकुर्वन्ति भस्मीभवन्ति वै सदा।।५८।।

समस्त जीवगण सर्वदा सोऽहं हं स को धारण करके जप करते हैं। नास्तिक लोग आपके अस्तित्व को स्वीकार न करते हुए भस्मीभूत होते हैं।

मृत्युंजये मृत्युभीतिर्मुमुक्षूणां न विद्यते।
तव मन्त्रजपात् सिद्धिं लभन्ते नात्र संशयः।।५९।।

हे मृत्यु को जय करने वाली माता! आपके मन्त्र के जप से मोक्षकामी लोगों को मृत्युभय नहीं रहता है एवं सिद्धिलाभ भी होता है। इसमें संशय नहीं है।

तत्र त्वं पूज्यसे लोकैर्यत्र नास्ति तमोगुणः।
सत्त्वशक्तिं समानीय भौतिका दूरसंस्थितैः।।६०।।

भौतिक जगत् से दूर रहकर जिस जगह तमोगुण नहीं रहता है, उसी जगह सत्त्वगुण को अवलम्बन करके आपकी पूजा करते हैं।

ब्रजाङ्गनाभिपूज्यायै ब्रह्मारण्यनिवासिन्यै।
सर्वशक्तिज्ञानमयै गायत्र्यै च नमो नमः।।६१।।

ब्रज की स्त्रियों से पूजित, ब्रह्मारण्य में वास करने वाली, समस्त शक्ति वाली, ज्ञानस्वरूपा आप गायत्री देवी को नमस्कार है।

हकारोऽथ मकारश्च क्लींकारं बीजमक्षरम्।
अग्रे नीत्वार्द्धमात्रां च पूजयन्ति च साधकाः।।६२।।

हकार, मकार, क्लीं बीज और आगे अर्धमात्रा को लगाकर साधक आपकी पूजा करते हैं।

भूतप्रेतपिशाचाश्च नरकिन्नरराक्षसाः।
द्विपदोऽथ चतुष्पादाः भजन्ति त्वां तु सर्वदा।।६३।।

भूत, प्रेत, पिशाच, नर, किन्नर, राक्षस, द्विपद और चतुष्पद प्राणिगण सर्वदा आपका भजन हैं।

भूयो भूयो नमामि त्वां त्वच्चरणयुगले स्वयम्।
देहि मातर्ययाचे त्वां वरदोऽभयमाश्रितः।।६४।।

बारम्बार आपके चरणयुगल में स्वयं नमस्कार करता हूँ। हे माता! मैं अभय वर माँग रहा हूँ आप प्रदान करो।

वसुमतीमथ श्यामां च मातृरूपेण वर्णिताम्।
मुक्तिदां ज्ञानदां चैव सिद्धिदात्रीं नमाम्यहम्।।६५।।

पृथिवीस्वरूपा, श्यामल अङ्ग वाली, माता के रूप में वर्णिता, गति, मुक्ति, ज्ञान और सिद्धि को देनेवाली आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वशक्त्या तु त्रिलोकेऽस्मिन् परिक्रामसि सर्वदा।
गङ्गागोदावरीकृष्णा गयाकावेरितीर्थकम्।।६६।।

आप अपनी शक्ति से गङ्गा, गोदावरी, कृष्णा, गया, कावेरी आदि तीर्थों का तथा तीनों भुवनों की सदा सर्वदा परिक्रमा करती रहती हो।

रोक्षादिकं त्वयि नास्ति नास्ति हिंसादिचिन्तनम्।
प्रसन्नां सवितुः मित्रां भूयो भूयो नमाम्यहम्।।६७।।

आपमें राग, हिंसा आदि चिन्तन नहीं है। सर्वदा प्रसन्नस्वरूपा, सूर्य के मित्र आपको बारम्बार मैं नमस्कार करता हूँ।

सोमसुधारसेनात्र च जनानां ह्लादयन्त्यपि।
अतस्त्वां ये भजन्ति वै ते तिष्ठन्ति यथासुखम्।।६८।।

आप चन्द्रसदृश अमृत की वर्षा करती हो, लोगों को आनन्द प्रदान करती हो। इसलिए आपको जो लोग भजते हैं, वे निश्चित ही सुखपूर्वक रहते हैं।

हंसपृष्ठा समासीनां ये स्मरन्ति द्विजोत्तमाः।
त्रिसन्ध्यायां समाराध्य पापतापात्तरन्ति ते।।६९।।

जो ब्राह्मणश्रेष्ठ हंसपृष्ठ को आरोहण करने वाली आपकी तीनों सन्ध्याओं में पूजा करके स्मरण करते हैं, वे पाप-ताप से तर जाते हैं।

हं क्षं ललाटचक्रे तु अर्द्धमात्रा तवेश्वरि।
ज्ञानविज्ञानशक्तिं च ददस्व जनमानसे।।७०।।

आप ललाटचक्र में हं, क्षं और जीवों की ईश्वरी अर्धमात्रा-स्वरूपा हो। आप लोगों के मन में ज्ञान, विज्ञान और शक्ति प्रदान करो।

सजीवजीवनिर्जीवे सर्वघटे सुशोभिता।
सगुणनिर्गुणमयी गुणागुणविवर्जिता।।७१।।

आप चेतन-अचेतन समस्त पिण्ड में सुशोभित हो। आप सगुण, निर्गुण और गुणातीत भी हो।

चतुःषष्ट्यक्षरे देवि! चतुर्वर्गप्रदायिनि!।
चतुर्युगे चतुर्वेदे त्वत्पदाब्जे नमाम्यहम्।।७२।।

चौंसठ अक्षरों वाली हे देवि! आप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष- इन चतुर्वर्ग को देने वाली हो। चारों युगों में चार वेदों के रूप से प्रसिद्ध हो। आपके चरणकमल में मैं नमस्कार करता हूँ।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
मन्त्रवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः

अथाष्टमो ऽध्यायः

(प्रणवतत्त्ववर्णनम्)

ऋषय ऊचुः

सर्वज्ञानयुता देवी मन्त्रप्रणवरूपिणी।
केन रूपेण सा तत्र विद्यते ऽक्षररूपके।।१।।

ऋषियों ने कहा कि सर्वज्ञान से युक्त मन्त्र प्रणवस्वरूपात्मिका वह गायत्री देवी किस प्रकार अक्षरों में स्थित है।

यं श्रुत्वेह पुनर्जन्मकृतं दुष्कृतमेव च।
भविष्यति यथा दूरं कथय मुनिपुङ्गव।।२।।

हे मुनिश्रेष्ठ! जिसको सुनकर पूर्वजन्मकृत दुष्कृत दूर हो जाएगा, उसे आप कहो।

नारद उवाच

एकदा विश्वनाथाय पृच्छति सोमपागणाः।
प्रणवक्रियायोगेन कथं सा तिष्ठति सदा।।३।।

नारद जी ने कहा- एक समय देवतागण विश्वनाथ शिवजी से पूछते हैं कि किस प्रकार प्रणवक्रिया योग से वह गायत्री सदा रहती है।

शिव उवाच

नादं तु प्रथमं तत्र तत्परं शब्दमेव च।
शब्दादक्षरसृष्टिश्च सोऽक्षरः प्रणवस्तथा।।४।।

शिव जी ने कहा- प्रथम नाद, उसके बाद शब्द एवं शब्द से अक्षर की सृष्टि हुयी है तथा वह अक्षर ही प्रणव है।

सुषुप्तिस्थानमासाद्य ज्योतिःशक्तिः प्रकीर्त्तितः।
प्रणवस्तिष्ठति तत्र अउमक्षरसंयुतः।।५।।

सुषुप्ति स्थान को आलम्बन करके ज्योति शक्ति रूप से प्रसिद्ध है। यह प्रणव अ, उ, म- इन तीनों अक्षरों से संयुक्त होकर वहीं पर रहता है।

प्रणवो यत्र गायत्री मन्त्राणामादिभूषिता।
भूर्भुवःस्वःजाग्रतं च सुषुप्त्यादिषु शोभिता।।६।।

जो प्रणव उन मन्त्रों से प्रथम भूषिता गायत्री है, वह प्रणव जाग्रत और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में भूः, भुवः तथा स्वः रूप से भूषित है।

स्वप्नजाग्रत् द्विशक्तिश्च गायत्र्यङ्गे सुशोभिता।
सा देवी सवितुर्तेजः घनान्धत्वं विनश्यति।।७।।

स्वप्न और जाग्रत- यह दो शक्ति गायत्री जी के अङ्ग में सुशोभित है। वह देवी सूर्य के तेज के समान घोर अन्धकार का विनाश करती है।

देवता ऊचुः

द्वे शक्ती केन रूपेण लभन्ते मानवाः सदा।
कथयतु महारुद्र! गायत्र्यास्तत्त्वविस्तृतम्।।८।।

देवताओं ने कहा- हे महारुद्र! गायत्री जी की दो शक्ति को किस प्रकार सर्वदा मनुष्य प्राप्त करता है, उसे विस्तार से कहो।

शिव उवाच

जगद्धात्री समुत्पन्ना पुनश्चैतन्यरूपिणी।
योगाङ्गी योगरूपा च यज्ञासीना जपाग्रजा।।६।।

शिव जी ने कहा- जगद्धात्री गायत्री स्वयं उत्पन्न होकर पुनः चैतन्यस्वरूप को अवलम्बन की हुई है। वह योगाङ्गी, योगस्वरूपा, यज्ञों में आसीना और जपाग्रजा है।

सा देवी स्वप्नजागृत्या सर्वान्तरेऽप्यवस्थिता।
चिच्छक्तिं मानवेभ्यश्च ददाति जगदात्मिका।।१०।।

वह देवी स्वप्न और जागृति अवस्थाओं में समस्त प्राणियों के अन्दर अवस्थित है। वह जगदम्बिका मानवों को चिति शक्ति प्रदान करती है।

सर्वज्ञानमयी नित्या सर्वत्र सुखरूपिणी।
वायोरिवादृश्यशक्तिः शरीरे जड़चेतने।।११।।

वह गायत्री देवी सर्वज्ञानमयी, नित्या तथा सदा सुखस्वरूपा है। वायु की तरह चेतन-अचेतन शरीर में वह अदृश्य शक्ति से अवस्थित है।

चित्तं संयम्य ये नित्यमाह्वयन्ति तु मानवाः।
पूर्वजन्मकृतं पापं सर्वमेवमपाभवेत्।।१२।।

जो मनुष्य नित्य चित्त को संयम करके गायत्री देवी का आवाहन करते हैं, उनका पूर्वजन्मकृत समस्त पाप दूर हो जाता है।

सर्वतीर्थस्वरूपां च गायत्रीं लोकमातरम्।
स्मरन्ति शुद्धपूतास्तां त्रिसन्ध्यायां द्विजोत्तमाः।।१३।।

ब्राह्मणश्रेष्ठ तीनों सन्ध्याओं में शुद्धपूत होकर उस समस्त तीर्थस्वरूपा, लोकमाता गायत्री जी का स्मरण करते हैं।

समृद्धचेतनाज्ञानं सर्वात्मने प्रयच्छति।
कामक्रोधाः न तिष्ठन्ति तेषां हृदि कदाचन।।१४।।

समस्त आत्माओं को समृद्ध चेतना ज्ञान प्रदान करती है, जिससे उनके हृदय में कभी भी काम, क्रोध आदि नहीं रहते हैं।

सद्गृहस्था हि ये केचित् सुखदुःखसमक्रियाः।
नित्यं कुर्वन्ति गोसेवां गुरुसेवां तथैव च।।१५।।

जो लोग गृहस्थाश्रम में रहकर सुख और दुःख को समान मानकर गोसेवा तथा नित्य गुरुसेवा करते हैं।

पित्रोः सेवापरा ये वै सदाचारे रताः सदा।
प्रसन्ना तेभ्यो गायत्री दद्याद् वैकुण्ठजं सुखम्।।१६।।

(और) जो लोग सदाचार में रहकर नित्य माता-पिता की सेवा करते हैं, उनको गायत्री जी प्रसन्न होकर वैकुण्ठोत्पन्न सुख को प्रदान करती हैं।

जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तिश्च नास्ति यस्य महात्मनः।
एकात्मा जगन्मत्वा च गायत्र्यङ्गे विभाति सः।।१७।।

जिस महात्मा की जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था नहीं है,

वह जगत् को एक आत्मा मानकर गायत्री जी के अङ्ग में शोभा पाता है।

बाह्यशक्तिं विना यश्च गायत्रीमेव चिन्तयेत्।
न विद्यते पुनर्जन्म तस्य भुवि कदाचन।।१८।।

जो व्यक्ति बाह्य शक्ति का चिन्तन न करते हुये गायत्री जी का चिन्तन करता है, उसका इस संसार में कभी भी पुनर्जन्म नहीं होता है।

चन्द्रस्य किरणो यद्वत् भिन्नस्थानेऽप्यवस्थितः।
एकोऽपि भिन्नरूपेण सा तु तिष्ठति भूतले।।१९।।

जिस प्रकार चन्द्र की किरणें पृथिवी पर भिन्न-भिन्न स्थानों में अवस्थित होने पर भी एक हैं, उसी प्रकार गायत्री जी भिन्न-भिन्न रूपों में रहने पर भी एक है।

तद्वत् सा वेदमाता च माता-भार्या-स्वसा यथा।
त्र्यवस्थायामवस्थाय सत्यमार्गं प्रयच्छति।।२०।।

उसी प्रकार वह वेदमाता गायत्री देवी माता, स्त्री, भगिनी आदि रूपों को धारण कर तीनों अवस्थाओं में रहकर सत्यमार्ग को प्रदान करती है।

आत्मानं च परित्यज्य यथा जीवो न तिष्ठति।
भूलोके भुवलोके च स्वर्गपाताल एव च।।२१।।

जिस प्रकार जीव आत्मा को छोड़कर भूलोक, भुवलोक और स्वर्ग, पाताल में नहीं रह सकता।

जलस्थलवर्तीं देवीमग्निर्ज्योतिस्वरूपिणीम्।
वेदवक्त्रीं परित्यज्य न वै तिष्ठन्ति केचन।।२२।।

उसी प्रकार जल और स्थल में रहने वाली उस अग्निज्योतिस्वरूपा वेदवक्त्री गायत्री जी को छोड़कर कोई भी नहीं रह सकता है।

जले तिष्ठति गायत्री स्थले चापि प्रतिष्ठिता।
वायुषु विद्यते सा च वह्निमण्डलवर्त्तिनी।।२३।।

वह गायत्री जल में रहती है और स्थल में भी प्रतिष्ठित है। वायु में और अग्निमण्डल में भी रहती है।

आकाशमण्डलस्था च पृथिवीरूपधारिणी।
ब्रह्मलोके रुद्रलोके विष्णुलोके तथैव तु।।२४।।

आकाशमण्डल में रहने वाली एवं पृथिवी के रूप को धारण करने वाली वह गायत्री ब्रह्मलोक, रुद्रलोक और विष्णुलोक में भी रहती है।

सर्वत्र परिव्याप्ता तु गायत्री गुणधारिणी।
तां विहाय भूतान्यत्र न तिष्ठन्ति चराचरे।।२५।।

भिन्न गुणों को धारण करने वाली वह सर्वत्र परिव्याप्त है। उनको छोड़कर इस चराचर जगत् में कोई भी नहीं रह सकता है।

मूलप्रकृतिरूपा सा व्यसृजत् सर्वमर्त्त्यजान्।
ततश्च तां परित्यज्य कथं स्थास्यन्ति जन्तवः।।२६।।

मूलप्रकृतिस्वरूपा उस गायत्री देवी ने समस्त प्राणियों की सृष्टि की है; इसलिए उनको छोड़कर प्राणी कैसे रह सकते हैं।

सर्वात्मनामक्षयवासयुक्ता
ददाति शान्तिं परमार्थचिन्ताम्।
नमामि तां तत्सवितुर्वरेण्या-
मभीष्टदां तत्त्वगुणानुयुक्ताम्।।२७।।

सबके अन्दर अक्षय वास करने वाली, सबको परमार्थ चिन्तन और शान्ति देने वाली, अभीष्ट फल को देने वाली, सूर्य की पूज्या और तत्त्वगुणों से युक्ता उस गायत्री देवी को मैं (शिव) नमस्कार करता हूँ।

नारद उवाच

मुनयः! वृत्तमाद्यन्तमुवाच बृषभध्वजः।
ये शृण्वन्ति तत्त्वमिदं पापं तेषां विनश्यति।।२८।।

नारद जी ने कहा- हे मुनिगण! बृषभध्वज ने साद्यन्त इस कथा को देवताओं से कहा। जो इस तत्त्व को सुनते हैं, उनका पाप नष्ट हो जाता है।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
प्रणवतत्त्ववर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः

अथ नवमोऽध्यायः

(नाममाहात्म्यवर्णनम्)

ऋषय ऊचुः

एकदा मुनयः सर्वे पप्रच्छुर्खलु नारदम्।
प्रजापतिसुतं देवं सर्वज्ञानविशारदम्।।१।।
मन्त्रयन्त्रान् परित्यज्य तन्त्रजपादिकर्मणा।
सन्तुष्यति जगन्माता केन रूपेण तद्वद।।२।।

एक वार समस्त ऋषिगणों ने सकल ज्ञान में प्रवीण ब्रह्मापुत्र देवर्षि नारद से पूछा था कि हे नारद! मन्त्र-यन्त्र को छोड़कर तन्त्र-जपादि कर्मों से जगन्माता गायत्री किस प्रकार सन्तुष्ट होती है, उसे कहो।

नारद उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे मातुः सन्तोषकारणम्।
न मन्त्रयन्त्रतन्त्रैश्च केवलं भक्तिभाजनम्।।३।।

नारद जी ने कहा- हे समस्त मुनिगण! गायत्री माता के सन्तोष के कारण को सुनो। वह गायत्री न मन्त्र, न यन्त्र तथा न तन्त्र से सन्तुष्ट होती है; अपितु केवल भक्ति से ही सन्तुष्ट होती है।

कलुषं याति दूरं च शान्तिस्तिष्ठति चेतसि।
पापसन्तापनाशिन्यै सद्वृत्त्यै ते नमो नमः।।४।।

(गायत्री जी के सन्तुष्ट होने पर) कलुषता दूर चली जाती है और हृदय में शान्ति विराजमान होता है। उस पापसन्ताप को नष्ट करने वाली सद्वृत्ति गायत्री जी को नमस्कार है।

खड्गरूपेण शस्त्रेण विघ्नानुत्सार्य सन्ततम्।
खलेभ्यः सज्जनेभ्यश्च सिद्धिं ददाति शङ्करी।।५।।

वह शङ्करी मङ्गल को देने वाली गायत्री देवी खड्गरूपक शस्त्र से विघ्नों को दूर करके साधु और दुष्टों को सिद्धि देती है।

गर्गः पराशरश्चैव विश्वामित्रविभाण्डकाः।
गायन्ति तव मन्त्रं च जपन्ति च भजन्ति च।।६।।

गर्ग, पराशर, विश्वामित्र, विभाण्डक आदि महर्षि गण आपके मन्त्र को गाते हैं, जपते हैं और भजन करते हैं।

घनान्धघोरसंसारादुद्धारयति नित्यशः।
घनवत् जलदात्री च तपःशक्तिं प्रयच्छति।।७।।

इस घोर अज्ञानरूपक अन्धकार से आच्छन्न संसार से सर्वदा उद्धार करती है, मेघ की तरह जल देने वाली है और लोगों को तपःशक्ति प्रदान करती है।

अनिन्द्यापरिमेया हि अनन्ता चार्कनायिका।
नीचबुद्धियुतान्मूर्खान् आनयति सतां पथि।।८।।

वह गायत्री देवी अनिन्द्या, अपरिमेया है। उनकी तुलना किसी के साथ भी नहीं की जा सकती है। वह असीम और सूर्य की नायिका है। नीच बुद्धियुक्त मूर्खगणों को सत्पथ पर लाती है।

चंचलाक्षि! नमामि त्वां विश्वविघ्नविनाशिनि।
चराचराभिपूज्यायै त्रिकालिन्यै नमो नमः।।९।।

हे चंचल नेत्र वाली! आप विश्व के विघ्नों का हरण करने वाली हो। चेतन तथा अचेतन के द्वारा पूज्या त्रिकालस्वरूपिणी आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

छद्माङ्गीं छत्रपतयः पूजयन्ति समन्ततः।
राजन्ते विविधं छत्रमुत्तमाङ्गे तवानघे।।१०।।

हे पापों से रहित माता! आपके श्रेष्ठ अङ्ग मस्तक पर विविध प्रकार के छत्र शोभित हो रहे हैं। छत्रपति अनेक राजा गण आपके इस छद्मपूर्ण अङ्ग की पूजा करते हैं।

जलं पीत्वा जीवगणाः नाशयन्ति तृषां यथा।
तव नामामृतं पीत्वा शान्तिं च लभते तथा।।११।।

जिस प्रकार समस्त जीवगण जल का पान करके तृष्णा का शमन करते हैं, उसी प्रकार आपके नामामृत को पीकर शान्ति प्राप्त करते हैं।

झंझावातैः नराः भीताः शान्तिमिच्छन्ति सुस्थिराम्।
निमग्नाः घोरसंसारे इच्छन्ति तव दर्शनम्।।१२।।

झंझावात से पीडित लोग शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। इस भयङ्कर संसार में निमग्न लोग आपके दर्शन की इच्छा करते हैं।

निःस्वाः बहुधनं प्राप्य यथा हर्षमुपागताः।
तव मायाकृतिं दृष्ट्वा योगिनां च तथा गतिः।।१३।।

(आपकी कृपा से) धनशून्य व्यक्ति बहुत धन को पाकर सहसा बहुत हर्ष प्राप्त करते हैं। आपके मायारूप को देखकर योगीजनों की भी वही स्थिति होती है।

टमकड़िण्डिमाः वाद्याः तव प्रियतराः सदा।
तस्माद् द्वादशवाद्यैश्च नरास्त्वां पूजयन्ति हि।।१४।।

टमक, डिण्डिमादि वाद्य यन्त्र आपके प्रियतम वाद्य हैं। इसलिए लोग विविध द्वादश प्रकार के वाद्यों से आपकी पूजा करते हैं।

ठूलशून्यस्वरूपा त्वं सर्वकर्मविशारदा।
न प्रवृत्तिः निवृत्तिर्वा नास्त्यदृश्यं दृश्यमेव च।।१५।।

आप शून्य में निवास करती है। आप समस्त कार्यों में दक्ष हैं। आपकी प्रवृत्ति तथा निवृत्ति नहीं है और आप लोगों के लिए दृश्य तथा अदृश्य भी हो।

डुण्डुभो विषशून्योऽपि वृथा करोति गर्जनम्।
दुष्टाऽपि तव पूजायां वृथैव विघ्नकारकाः।।१६।।

जिस प्रकार विषरहित सर्प विषशून्य होने पर भी वृथा गर्जन करता है, उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति वृथा ही आपकी पूजा में विघ्न करते हैं।

ढौकनं तु समानीय नराः गच्छन्ति मन्दिरम्।
विना तेनैव द्रव्येण किंचिल्लभ्यं न लभ्यते।।१७।।

लोग पूजा सामग्री लेकर मन्दिर को जाते हैं, उसके विना कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।

अर्धमात्रां शून्यरूपां बहुशक्तिसमन्विताम्।
आयुर्विवर्द्धनां देवीं त्वामेव पूजयाम्यहम्।।१८।।

अर्धमात्रा, शून्यस्वरूपा, अनेक शक्तियों रो युक्ता, आयु को बढ़ाने वाली आपकी मैं पूजा करता हूँ।

तत्त्वरूपा तात्त्विकानां योगीनां योगरूपिणी।
वेदैर्विभूषिता त्वं वै वरेण्या सर्वयाज्ञिकैः।।१९।।

आप तत्त्वज्ञानियों की तत्त्वरूपा, योगियों की योगस्वरूपिणी, वेदों से विभूषिता तथा समस्त याज्ञिकों से पूजनीया हो।

थुत्कारं शत्रुणां शब्दं श्रुत्वा रणाङ्गणे ततः।
भीमरूपा सदा भूत्वा संहारयसि तत्क्षणात्।।२०।।

युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के थुत्कार को सुन कर आप उसके बाद सर्वदा भयंकर रूप को धारण कर उसी क्षण ही उनका संहार कर देती हो।

दारिद्र्यदुःखभीतिं च जरामरणनाशिनि!।
पवित्रा परमा त्वं हि जगन्मातः! नमोऽस्तु ते।।२१।।

हे जगन्माता! आप दरिद्रता, दुःख, भय आदि तथा जरा-मरण का नाश करने वाली हो। अतः आपको नमस्कार है।

धन्यां च धनदां धीरां धैर्यशक्तिप्रदायिनीम्।
धरित्रीव सर्वंसहां त्वां नमामि हरप्रियाम्।।२२।।

आप धन्या, धन देने वाली, धैर्य शक्ति प्रदान करने वाली तथा पृथिवी की तरह सर्वंसहा हो। हे शिवप्रिया! आपको नमस्कार करता हूँ।

नागयक्षरक्षगणाः अन्विष्यन्ति च सर्वदा।
तेषामभीष्टदानं तु करोतु जगदम्बिके।।२३।।

हे जगन्माता! आपका नाग, यक्ष, रक्षगण सर्वदा अन्वेषण करते हैं। आप उनको इच्छित वस्तु प्रदान करो।

पीतवस्त्रधरां देवीं परमां गतिदायिनीम्।
विश्वनेत्रां जगत्स्रष्ट्रीं त्वामेव प्रणमाम्यहम्।।२४।।

पीत वस्त्र धारण करने वाली, परम गति को प्रदान करने वाली, विश्व के नेत्रसदृश तथा जगत् का निर्माण करने वाली आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

फलं ददाति वै नित्यं सुभक्तेभ्यो यथेप्सितम्।
नमस्तस्यै वेदमात्रे सर्वहृदयवासिनी।।२५।।

हे समस्त हृदयों में रहने वाली माता गायत्री! आप सदा भक्तों को यथाभिलषित फल देती हो। अतः उस वेदमाता को नमस्कार है।

वेदप्रवक्त्रीं जननीं श्रुतीनां
वाणीस्वरूपां निखिलात्मरूपाम्।
विद्याप्रदात्रीं कमलासनस्थां
नमामि देवीं जगति प्रसिद्धाम्।।२६।।

वेद का व्याख्यान करने वाली, वेदमाता, वाणी स्वरूपा, अशेषरूपा, विद्या देने वाली, कमल के आसन में बैठने वाली और जगत् में प्रसिद्धा उस गायत्री देवी को नमस्कार करता हूँ।

भिक्षावृत्तिं समालम्ब्य यज्ञं कुर्वन्ति भक्तितः।
साधकाः साधवस्तावद् लब्धकामाः भवन्ति च।।२७।।

साधक और साधु लोग भिक्षा वृत्ति का आश्रयण करके भक्तिपूर्वक आपका यज्ञ करते हैं और यज्ञ का फल पाते हैं।

मृगतृष्णाभिलोभेन मरुयात्री भ्रमेद्यथा।
तव मायासु निमग्ना भ्रमन्ति साधवस्तथा।।२८।।

मृगतृष्णा के लोभ से जिस प्रकार मरुयात्री भ्रमित हो जाता है, उसी प्रकार आपकी माया से साधु लोग निमग्न होकर भ्रमित होते हैं।

यन्त्रमन्त्रादिमुद्राभिर्जपतपादिकर्मभिः ।
त्वां पूजयन्ति सततं वेदज्ञा ब्राह्मणाः सदा।।२६।।

वेदज्ञ ब्राह्मण सर्वदा आपकी पूजा यन्त्र, मन्त्र तथा मुद्राओं से जप-तप आदि कर्मों के द्वारा करते हैं।

रक्षांसि देवाः नरकिन्नराश्च
भूताश्च प्रेताऽपि मरुद्गणाश्च।
सर्वेऽनिलाः रुद्रगणाभिधानं
सभक्तिकं त्वां प्रणमन्ति देवि।।३०।।

हे देवि! समस्त राक्षस, देव, मनुष्य, किन्नर, भूत, प्रेत, मरुद्गण, वायु, रुद्रगण आदि भक्ति के साथ आपको प्रणाम करते हैं।

लयाङ्गपूजनादिभिरर्चयन्ति च सर्वदा।
लीनमायान्ति ते सर्वे त्वच्छरीरे विशेषतः।।३१।।

जो लोग लयांग पूजा से आपकी अर्चना सदा करते हैं, वे लोग आपके शरीर में विशेष भाव से लीन हो जाते हैं।

विष्णुमायां तु संसारं परित्यज्य द्विजोत्तमाः।
मन्दिरं तव गच्छन्ति पुष्पाक्षतादिभिर्युताः।।३२।।

श्रेष्ठ ब्राह्मणगण विष्णु मायाभूत इस संसार को छोड़कर पुष्प, अक्षत आदि लेकर आपके मन्दिर को जाते हैं।

शरणागतसंत्राणे सर्वाभीष्टप्रदायिनि!।
तवांघ्रियुगले मातः प्रणमामि निरन्तरम्।।३३।।

शरणागत की रक्षाकारिणी, समस्त कामनाओं की पूर्त्ति करने वाली माता! आपके चरणयुगल में मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ।

षड्वैरीन्तु पराजित्य ये कुर्वन्ति तवार्चनम्।
तेभ्यो दत्त्वा महालक्ष्मीं पूर्णकामान् करोसि वै।।३४।।

षड्शत्रुओं का नाश करते हुये जो लोग आपकी पूजा करते हैं, हे देवि! उन लोगों को आप धन-सम्पत्ति देकर पूर्णकाम कराती हो।

सर्वेषु शास्त्रेषु परं प्रपूज्या
वेदे प्रसिद्धा स्वयमात्मशक्त्या।
संसारसिन्धौ तरणी त्वमेव
परं नयास्माननतिदीनसाधून्।।३५।।

आप समस्त शास्त्रों के विषय में पूजनीया हो। अपनी आत्म-शक्ति से वेद में प्रसिद्धा हो। आप संसाररूपी सागर से तरने के लिए नौका-सदृश हो। अतः आप हम दरिद्र दुःखी साधुओं को पार करो।

हरन्ति सकलाः पापास्तव मन्त्रार्थगीतकैः।
पठने पाठने यज्ञे श्रवणे कथनेऽम्बिके।।३६।।

हे अम्बिका! आपके मन्त्रार्थ सङ्गीत के पठन, पाठन, श्रवण तथा यज्ञों में कहने से समस्त प्रकार के पापों का हरण हो जाता है।

क्षरे सुधास्यन्दिमुखारविन्दे
दृष्ट्वा तु भक्ताः प्रणमन्ति शीघ्रम्।
ददातु मुक्तिं सहसा हि देवि!
नामामृतं ते भुवि मानवेभ्यः।।३७।।

हे देवि! अमृत की धारा प्रवाहित करते हुये आपके मुख को देखकर भक्तगण प्रणाम करते हैं। आपका नामामृत मनुष्यों को इस संसार से निश्चित ही मुक्ति प्रदान करे।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
नाममाहात्म्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः

●

अथ दशमोऽध्यायः

(स्तोत्रवर्णनम्)

ऋषय ऊचुः

भो मुने! कथ्यतामस्मान् गायत्र्याः स्तोत्र कीदृशम्।
केन रूपेण सन्तुष्टामकारयत् भगवान् स्वयम्।।१।।

ऋषियों ने कहा– हे ऋषिश्रेष्ठ देवर्षि नारद! गायत्री जी का स्तोत्र कैसा है। किस प्रकार स्वयं भगवान् ने उन्हें सन्तुष्ट किया था।

नारद उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे गायत्र्याः स्तुतिविस्तरम्।
चतुर्भुजः स्वयं विष्णुस्तां पूजयति सर्वदा।।२।।

नारद जी ने कहा– हे ऋषिगण! आप विस्तार से उन स्तुतियों को सुनो। चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु सर्वदा उनकी पूजा करते हैं।

वृक्षस्य शाखासु भवान्तरेषु
सर्वेषु प्राणिषु चराचरेषु।
काष्ठेषु चाग्निषु घनान्धकारे
सदा भवेन्मातृमयं मनो मे।।३।।

वृक्षों की शाखाओं में, अन्य जीवों में, समस्त प्राणियों में, काष्ठ में, अग्नि में तथा भयङ्कर अन्धकार में वह सर्वदा विद्यमान है। अतः मेरा मन सर्वदा मातृमय हो।

गच्छामि यावत्तव मन्दिरं तु
पश्यामि तावत्तव पादपद्मम्।
ततो परावर्त्तितुमस्ति नेच्छा
सदा भवेन्मातृमयं मनो मे।।४।।

जब भी मैं आपके मन्दिर को जाता हूँ तब आपके पद्मपाद

को देखता हूँ। आपके मन्दिर से आने की इच्छा नहीं होती है। अतः मेरा मन सर्वदा मातृमय हो।

निदाघग्रीष्मे शरदि वसन्ते
शीते च वर्षाशिशिरेषु सत्सु।
ब्रजामि देवि! तव मन्दिरं वै
सदा भवेन्मातृमयं मनो मे।।५।।

भयङ्कर ग्रीष्म में, शरद् ऋतु में, वसन्त काल में, शीत ऋतु में तथा वर्षा और शिशिर ऋतुओं में भी हे देवि! मैं आपके मन्दिर को जाता हूँ। अतः मेरा मन सर्वदा मातृमय हो।

नद्यास्तटे वा गिरिकन्दरे वा
गृहाङ्गणे चापि कदम्बमूले।
सर्वेषु स्थानेषु जपामि नित्यं
सदा भवेन्मातृमयं मनो मे।।६।।

नदी के किनारे अथवा पर्वत की गुफा में घर के आंगन में, अथवा कदम्ववृक्ष के मूल में, हर जगह मैं सर्वदा जप करता हूँ। अतः मेरा मन सर्वदा मातृमय हो।

जगत्पतिं वीक्ष्य स्मरामि तावत्
एषोऽपि नूनं मम चिन्तनीया।
साभीष्टदात्री चिरशान्तमूर्त्ति-
र्नमामि तस्याः चरणेषु भक्त्या।।७।।

मैं जगत्पति जगन्नाथ को देखकर स्मरण करता हूँ कि यह निश्चित ही मेरी चिन्तनीया देवी है। यह ही मेरे अभीष्ट फल को देने वाली तथा नित्य शान्तस्वरूप है। उनके चरणों में भक्ति के साथ नमस्कार करता हूँ।

प्रदोषकाले मुनिपुङ्गवाश्च
ब्रजन्ति तस्या मुखदर्शनार्थम्।
दृष्ट्वा पुनस्तां मृदुमन्दहासां
जपन्ति ते वै सहभक्तियुक्ताः।।८।।

श्रेष्ठ मुनिगण प्रदोष के समय में उनके मुखदर्शन-स्वरूप के दर्शन के लिए जाते हैं। पुनः उनके मुख पर सुमधुर मृदु मन्द हास्य को देखकर भक्ति के साथ आपका नाम जपते हैं।

पुण्यात्मने पुण्यफलं प्रदातुं
सदैव देवि! यदि तत्पराऽसि।
तवापि भक्ताः निजमुक्तिहेतो-
र्गच्छन्ति तावत् तव मन्दिरं यत्।।९।।

हे देवि! जिस प्रकार आप पुण्य करने वाले भक्तों के प्रति पुण्य के फल को देने के लिए सदा तत्पर रहती हो, उसी प्रकार आपके भक्त भी आपके नाम के श्रवणमात्र से ही मुक्ति के निमित्त आपके मन्दिर को जाते हैं।

यज्ञादिकार्ये भवनस्य शुद्धौ
करोति पूजां तव तुष्टिहेतोः।
आद्यं त्वमेव अपरे तु पश्चात्
त्वत्पादपद्मं शरणं नमस्ते।।१०।।

हे देवि! अग्निहोत्रादि यज्ञकर्मों में, गृह के शुद्धिकरण में आपकी सन्तुष्टि-हेतु लोग पूजा करते हैं। पूजादि क्रिया में आप प्रथम हो तथा अन्य देवगण आपके बाद पूजा पाते हैं। अतः आपको नमस्कार है। आपके चरणकमलों की हम शरण लेते हैं।

त्वं पूज्यसे सर्वगृहाङ्गणेषु
गोरूपमास्थाय जनैः सुपुण्यैः।
ततो हि देवि! प्रणमामि नित्यं
यावन्न कण्ठः मम सन्निरुद्धः।।११।।

हे देवि! आप पुण्यवान् लोगों से उनके घरों के आंगन में गोस्वरूप को धारण करके पूजा पाती हो। अतः जब तक मेरा कण्ठ अवरुद्ध नहीं होता है, तब तक मैं आपकी स्तुति करता रहूँगा।

अग्निं समालोक्य यथा पतङ्गा
व्रजन्ति शीघ्रं सविशेषगर्वाः।

तेनैव रूपेण भवत्समीपं
गच्छन्ति सर्वे नरकिन्नराद्याः ।।१२।।

जिस प्रकार अग्नि को देखकर पतंग अतिशीघ्र गर्व के साथ उसके पास जाते हैं, उसी प्रकार समस्त मनुष्य तथा किन्नर आदि आपके समीप जाते हैं।

मरुद्गणाः रुद्रगणाभिधाना
भास्वद्गणाः भूतगणाः ग्रहाश्च।
शुष्मापि स्वस्थानमतो विहाय
त्वामेव मातः परिपूजयन्ति ।।१३।।

हे माता! समस्त मरुद्गण, रुद्रगण, सूर्यगण, भूतगण, ग्रहमण्डल, अग्नि भी अपने स्थान को छोड़कर आपकी ही पूजा करते हैं।

देशान्तरेषु भुवनत्रयेषु
सर्वेषु स्थानेषु तपःस्थलेषु।
यत्रापि गच्छामि विलोकयामि
त्वामेव देवीं मुनिवन्दनीयाम् ।।१४।।

हे देवि! अन्य देशों में, तीनों लोकों में, समस्त तपस्या के स्थान में, हर जगह जहाँ कहीं भी मैं देखता हूँ, केवल मुनियों की वन्दनीया देवी आप ही दिखाई देती हो।

संसारवह्नौ परितो निमग्नान्
असज्जनानुद्धर भारभूतान्।
त्वमेव मुक्तिकरणे समर्था
त्वत्पादपद्मे हि नताऽस्मि नित्यम् ।।१५।।

पृथिवी के भारभूत संसाररूप अग्नि में पतित असत् लोगों का उद्धार करो। आप ही केवल मुक्ति देने में समर्थ हो। आपके पद्मपाद के शरण में जाकर नित्य नमस्कार करता हूँ।

अष्टाङ्गयोगाङ्गलयाङ्गसूत्रैः
षट्चक्रषड्ग्रन्थिवशं विधाय।
एकासनस्थाः प्रजपन्ति ये तु
सर्वोऽपवर्गः फलभागिनस्ते ।।१६।।

जो अष्टांग योगांग लयांग सूत्र से षड्ग्रन्थिरूपक षड्चक्रों को वश में करके एक आसन पर ही जप करते हैं, वे समस्त प्रकार के फलभोग करते हैं।

मेघं समालोक्य यथा चकोरः
जलस्य पाने मतिमादधाति।
तथैव त्वद्दर्शनकांक्षिणश्च
तिष्ठन्ति वै मन्दिरसम्मुखीनाः।।१७।।

जिस प्रकार चकोर मेघ को देखकर उसके जल को पीने में अपने मन को स्थिर करता है, उसी प्रकार आपके दर्शन चाहने वाले आपके मन्दिर के सामने बैठे रहते हैं।

हस्ते भवत्याः बहुमूल्यमाला
कण्ठे च मुक्तामणिहारलोलः।
पदारविन्दे तव भूषणानि
पश्यन् सहस्रं प्रणमामि देवि!।।१८।।

हे देवि! आपके हाथ में बहुमूल्य माला शोभा पा रही है। कण्ठ में भी मुक्ताओं की माला शोभित हो रही है। आपके पद्मपाद में भूषित भूषणों को देखकर हजार बार प्रणाम कर रहा हूँ।

सुषुम्णामार्गमवरोधयन्त-
स्तड़िन्मनःसंयमतां विधाय।
वामाङ्गभूत्वाऽनुजपन्ति ये तु
ते पुण्यमासाद्य दिवं ब्रजन्ति।।१९।।

जो साधक सुषुम्णा मार्ग का अवरोध करके विद्युत् सदृश मन का संयमन करते हुए तथा वामांग होकर बारम्बार मन्त्र का जप करते हैं, वे निश्चय ही पुण्य प्राप्त करते हुए स्वर्ग को जाते हैं।

स्त्रीसङ्गसौख्यं न विचार्य चित्ते
कालस्य कष्टं न च चिन्तयित्वा।
यत्रास्ति मातुर्गुणवर्णनं च
कुर्यात्तु तस्याः जप केवलं वै।।२०।।

स्त्री-सङ्गजन्य सुख का विचार न करते हुए तथा काल के कष्ट का चिन्तन न करके, जहाँ पर माता के गुणों का वर्णन होता है, वहीं पर ही उनका जप करना चाहिए।

हिमालयात् सागरप्रान्तभागं
मध्ये मनुष्याः बहुजीविनश्च।
वेदेषु दक्षाः खलु शुद्धपूताः
स्तुवन्ति त्वां मन्त्रशतैश्च सन्तः।।२१।।

हिमालय से सागरान्त तक, इसके मध्य में रहने वाले सन्त, मनुष्यादि प्राणिगण वेदों में दक्षता प्राप्त करके तथा शुद्धपूत होकर अनेकों मन्त्रों से आपकी स्तुति करते हैं।

यावत् पृथिव्यां सरितः समुद्राः
सुरालयादिबहुपर्वताश्च।
यावद् विनष्टौ न हि चन्द्रसूर्यौ
तावत्तवाहं भजनं करोमि।।२२।।

इस पृथिवी में जब तक नदी, समुद्र, देवालय, पर्वत आदि रहेंगे तथा जब तक चन्द्र-सूर्य आदि नष्ट नहीं होते, तब तक आपका भजन मैं करता रहूँगा।

गायत्र्युवाच

स्तुत्या प्रसन्नतां प्राप्य गायत्र्युवाच केशवम्।
शृणुष्व त्वं जगन्नाथ वेदविद्याविशारद।।२३।।
यावत् सृष्टिस्थितिश्चास्ति तावत्त्वं पुत्रवन्मम।
पश्यामि संशयो नास्ति कथयामि सहस्रशः।।२४।।

इस प्रकार भगवान् विष्णु की स्तुति से सन्तुष्ट होकर गायत्री जी ने कहा- हे वेदविद्या में निष्णात जगन्नाथ! आप सुनो। यह सृष्टि जब तक है, तब तक मैं आपको पुत्र की तरह देखूँगी। इसमें संशय नहीं है। यह मैं हजार बार कह रही हूँ।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
स्तोत्रवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः

अथैकादशोऽध्यायः
(ब्रह्मविद्यास्वरूपकथम्)

ऋषय ऊचुः

सर्वज्ञानविदां श्रेष्ठ! ऊर्ध्वरेतात्मदर्शक।
सकलयोगतत्त्वज्ञ! सत्यवादिन् सुरप्रिय।।१।।

भो मुने! त्वं त्रिकालज्ञ! अनुज्ञां कुरुः नः सदा।
सा देवी केन रूपेण ब्रह्मविद्यामवोचत।।२।।

ऋषियों ने कहा– हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! आप ऊर्ध्वरितस्, आत्मदर्शक, समस्त योग के तत्त्व को जानने वाले, सत्य कहने वाले हो। अतः आप हम लोगों को उपदेश दो कि उस गायत्री देवी ने कैसे ब्रह्मविद्या को कहा था।

नारद उवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे ब्रह्मविद्यास्वरूपकम्।
एकदा तु महादेवः कैलासाचलकन्दरे।।३।।

ध्यानमार्गेण सा देवी निमन्त्रिता तपःस्थलीम्।
मानसैः पूजितां तां च पप्रच्छ तात्त्विकं वचः।।४।।

नारद ने कहा– हे समस्त ऋषिगण! आप सब सुनो। कदाचित् महादेव कैलास पर्वत की गुफा में ध्यानमग्न थे। उन्होंने उस ध्यानमार्ग से गायत्री देवी को उस तपस्या स्थल पर निमन्त्रित करके मानसोपचार किया। तदनन्तर उस देवी से तात्त्विक प्रश्न पूछे।

शिव उवाच

भो शक्ते कमलासने! सृष्टिस्थितिविनाशिनि।
ब्राह्मि वैष्णवि रौद्रि त्वं वेदतत्त्वाभिभाषिणी।।५।।
कृपया वरदे देवि! किं तावद् ब्रह्मचिन्तनम्।
कथय केन भावेन प्राणिषु च न लक्ष्यते।।६।।

शिव जी ने कहा- हे शक्तिस्वरूपिणी, कमल के आसन के ऊपर बैठने वाली, सृष्टि-स्थिति तथा विनाशकारिणि, ब्राह्मि, परम वैष्णवि, वेदतत्त्व को कहने वाली! आप कृपा करके कहो कि वह ब्रह्म का चिन्तन क्या है? वह प्राणियों में लक्षित क्यों नहीं होता है?

गायत्र्युवाच

शृणु देव प्रवक्ष्यामि अपूर्वं ब्रह्मभावनम्।
वायुयमाग्निवरुणाः सर्वे ब्रह्ममयात्मकाः।।७।।

गायत्री जी ने कहा- हे देव! मैं उस अपूर्व ब्रह्मतत्त्व को कह रही हूँ; आप सुनो। वायु, यम, अग्नि, वरुण आदि समस्त ब्रह्म-मय हैं।

स्त्रीपुत्रकन्यकास्तावत् शत्रुमित्रगणादिकम्।
सज्जनो ब्रह्मदर्शी च समदृष्ट्यभिदर्शकाः।।८।।

स्त्री, पुत्र, कन्या, शत्रु, मित्र, साधु लोग तथा ब्रह्मदर्शी आदि को गायत्री समान दृष्टि से देखती है।

दुःखशोकात् परे स्थित्वा मायामोहं न चिन्तनम्।
शरीरस्थान् षड्रिपून् वशीभूतं करोति यः।।९।।
विभावयेत् स्वमनसि अंशोऽहं परमात्मनः।
नूनं स ब्रह्मतत्त्वज्ञ ब्रह्मतत्त्वविचिन्तकः।।१०।।

जो मनुष्य दुःख के शोक से दूर रह कर, माया मोह का चिन्तन न करते हुये शरीर के अन्दर विद्यमान काम, क्रोधादि छः शत्रुओं को वशीभूत करता है तथा अपने मन में अपने-आपको परमात्मा का अंश के रूप में स्वीकार करता है; वह निश्चित ही ब्रह्मतत्त्व का चिन्तन करने वाला ब्रह्मज्ञानी होता है।

सन्तरणार्थं झसानां यथैवमाश्रितं जलम्।
तद्वद् जीवसमूहानामेकं निर्वाणचिन्तनम्।।११।।

जिस प्रकार मत्स्य विभिन्न स्थानों पर सन्तरण करते हुये भी उसका आश्रयभूत स्थान जल ही रहता है, उसी प्रकार समस्त

जीवों की उपभोगों में प्रवृत्ति होने पर भी एकमात्र ब्रह्मचिन्तन ही उनका आश्रय होता है।

ज्ञानामृतं च यो पीत्वा तृप्तो भवति चान्तरे।
नास्तीह तस्य कर्त्तव्यं यस्यास्ति सो न पण्डितः।।१२।।

जो मनुष्य ज्ञानरूप अमृत को पीकर तृप्त होता है, उसका इस संसार में कुछ भी कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता है; परन्तु जिसका कर्त्तव्य अवशिष्ट रहता है, वह 'पण्डित' पदवाच्य नहीं होता है।

शरीरशोधनार्थाय जलमावश्यकं यथा।
स्वात्मप्रक्षालनार्थाय मन्मन्त्रजपनं तथा।।१३।।

जिस प्रकार शरीर की शुद्धि-हेतु जल अपेक्षित है, उसी प्रकार आत्मा के शोधन-हेतु मेरे मन्त्र का जप आवश्यक है।

ब्रह्मदर्शनमालम्ब्य इन्द्रियांश्च वशं नयेत्।
क्रियायोगबलेनैव यजनयाजनादिना।।१४।।

जप, तप, ध्यान, यजन, याजन आदि से ब्रह्मदर्शन का अवलम्बन करते हुये इन्द्रियों को वशीभूत करना चाहिए।

मन्मार्गं हृदि संचिन्त्य यः करोति स्वकर्म च।
हिंसाद्वेषविकारांश्च न भवन्ति कदाचन।।१५।।

जो मनुष्य मेरे मार्ग को हृदय में चिन्तन करते हुये अपना कर्म करता है, उसमें हिंसा, द्वेष आदि विकार कभी भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

यो साधुश्चिन्तयेन्नित्यमात्मसत्यं चिरन्तनम्।
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपं च तस्य मृत्युर्न विद्यते।।१६।।

जो मनुष्य व्यक्त-अव्यक्त स्वरूपी शाश्वत सत्य आत्मा का नित्य चिन्तन करता है, उसकी मृत्यु नहीं होती है।

चिन्तयित्वा विधिमिमं तपः कुर्वन्ति ये नराः।
ते नूनं स्वर्गमायान्ति नास्ति संशय शङ्कर।।१७।।

हे शङ्कर! जो मनुष्य इस विधि को भलि-भाँति सोचकर सर्वदा तपस्या करते हैं, वे निश्चित ही स्वर्ग को आते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

नारद उवाच

निशम्य ब्रह्मज्ञानं तु कृतकृत्योऽभवत् शिवः।
देवीं प्रणम्य सानन्दं स्वीचकार कृतांजलिः।।१८।।

नारद जी ने कहा कि शिव जी आनन्दित मन से गायत्री जी के मुख से ब्रह्मज्ञान को सुन कर कृतकृत्य हो गये और गायत्री देवी को प्रणाम करके अंजलिबद्ध हुये।

सहस्रलोचने देवि! सहस्रबाहुधारिणि!।
सहस्रशीर्षसंयुक्ते! सहस्रपादशोभिनि!।।१९।।
नौमि त्वच्चरणं नित्यं सहस्ररुद्रगणैरहम्।
नानारूपधरे मातः! जगदानन्दकारिणि!।।२०।।

हे सहस्र लोचनात्मिका, सहस्र बाहु-युक्ता, सहस्र मस्तक तथा हजारों पादों द्वारा शोभिता, अनेक रूपों को धरने वाली, जगत् को आनन्द प्रदान करने वाली माता गायत्री! मैं अपने गणों के साथ आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ।

गायत्री उवाच

शृणुष्व त्वं महायोगिन्! येन भावेन वन्दिता।
यक्षरक्षगणास्तत्र पूजयन्ति च मां सदा।।२१।।

गायत्री जी ने कहा कि हे योगियों में श्रेष्ठ शिव जी! यक्ष, रक्ष आदि जिस प्रकार से वन्दना करके मेरी पूजा करते हैं, उसे सुनो।

मां विहाय प्राणिगणाः न तिष्ठन्ति कदाचन।
दृश्यादृश्यत्वभावेन तिरोहिता भवाम्यहम्।।२२।।

मुझे छोड़कर प्राणिगण कभी भी नहीं रहते हैं। मैं सर्वदा दृश्य-अदृश्य भाव से तिरोहित रहती हूँ।

भगिनी जाया जननी च पुत्रपौत्रादयस्तथा।
मन्मायाऽवच्छिन्नास्तु विभ्रमन्ति समन्ततः।।२३।।

मेरे मायाजाल में भगिनी, स्त्री, माता, पुत्र तथा पौत्र आदि पड़कर हर तरफ भटक रहे हैं।

मामेकां सर्वकालेषु सर्वभूतेषु शाश्वतीम्।
यः सदा चिन्तयेन्नित्यं स नूनं लप्स्यते सुखम्।।२४।।

जो मनुष्य हर समय समस्त भूतों में मेरा नित्य स्थायी रूप से चिन्तन करता है, वह निश्चय ही सुख को प्राप्त करता है।

आकाशवायुरूपाहं आपोऽग्निर्भूमिरेव च।
दिवा दिवाकरश्चैव निशा निशाकरस्तथा।।२५।।

मैं पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाशरूपा हूँ। मैं दिन में सूर्य और रात्रि में चन्द्र होकर अन्धकार का विनाश करती हूँ।

विष्णोः पालनशक्तिश्च ब्रह्मणः सृष्टिरेव च।
तथैव ध्वंसशक्तिस्तु ज्ञानीनां जननीदृशा।।२६।।

मैं विष्णु जी की पालन शक्ति एवं ब्रह्मा जी की सृजना शक्ति हूँ, उसी प्रकार आपकी विनाशक शक्ति हूँ तथा ज्ञानियों की मातृस्वरूपा हूँ।

सत्योऽहं सत्यरूपा च सत्यं सर्वस्थलेषु च।
तत्रैवाहं यत्र सत्यं तिष्ठामि युगपत् सदा।।२७।।

मैं सत्य एवं सत्यस्वरूपा हूँ। संसार के हर जगह में सत्य हैं। जिस जगह सत्य रहता है, उस जगह मैं वास करती हूँ।

संसारे प्रेमरूपाहं प्रेम्णा मे हृदयं स्थिरम्।
प्रेम्णा ये मामाह्वयन्ति ते मां प्राप्स्यन्ति निश्चितम्।।२८।।

मैं संसार में प्रेमस्वरूपा हूँ। मेरा हृदय प्रेम से स्थिर है। प्रेमपूर्वक जो मेरा आह्वान करते हैं, वे निश्चित ही मुझे प्राप्त करते हैं।

जीवात्मा परमात्माऽहं शरीरे प्राणरूपिणी।
शाश्वती निर्गुणा चापि राक्षसानां विनाशिनी।।२९।।

मैं जीवात्मा, परमात्मा तथा सबके शरीर में प्राणरूपा हूँ। मैं नित्य स्थायी, गुणशून्या एवं राक्षसों का विनाश करने वाली हूँ।

नदीषु जह्नुकन्याऽहं गिरिषु मेरुपर्वतः।
वैकुण्ठे विष्णुभार्याऽहं पालयामि चराचरम्।।३०।।

मैं नदियों में गङ्गा तथा पर्वतों में सुमेरु हूँ। मैं वैकुण्ठ में विष्णु जी की प्रिया के रूप में समस्त जगत् का पालन करती हूँ।

बलवीर्येण ब्रह्मास्मि सर्वदा धृतिसंस्थिता।
अणुश्च परमाणुश्च ज्ञानविज्ञानदायिनी।।३१।।

मैं बल-वीर्य से ब्रह्म हूँ तथा सर्वदा धैर्य धारण करती रहती हूँ। मैं अणु और परमाणु रूप से सबको ज्ञान-विज्ञान प्रदान करती हूँ।

गतिमुक्तिप्रदात्र्यहं प्रयच्छामि सुखात् सुखम्।
एकाऽहं नास्ति द्वितीया संसारे दुःखसागरे।।३२।।

मैं गति और मुक्ति को देने वाली तथा भौतिक सुख से पारमार्थिक सुख को देने वाली हूँ। मैं इस दुःखपूर्ण संसाररूपी समुद्र में एकमात्र सत्य हूँ। मुझसे अन्य कोई नहीं है।

मुनीनां चिन्तनीयाऽहं राज्ञां नित्या प्रपूजिता।
गृहीणां वन्दनीया च गीताऽहं ग्रन्थविस्तरैः।।३३।।

मैं मुनियों की चिन्तनीया, राजाओं की नित्य पूजनीया, गृहस्थ जनों की वन्दनीया तथा समस्त शास्त्रों के मध्य में गीता हूँ।

यदा मत्पूजने कर्म कुर्वन्ति च द्विजोत्तमाः।
शिवालये मन्दिरे वा प्रान्तरे गिरिकन्दरे।।३४।।
अहौ वा पुष्पमालायां चूतवकुलसङ्गमे।
केवलं यत्र मे भक्तिः तत्रैव निवसाम्यहम्।।३५।।

श्रेष्ठ ब्राह्मण जन जब मन्दिर में, शिव के समीप में, प्रान्तर में, गुफा में, सर्प में, पुष्पों की माला अथवा आम्रमुकुल में जहाँ कहीं भी मेरी पूजा करते हैं तब जिसमें मेरी भक्ति विद्यमान रहती है, उसी में मैं वास करती हूँ।

शिव उवाच

चम्पापुष्पसमा देवि! शुद्धचन्दनचर्च्चिते!।
शुद्धवस्त्रपरीधाने! त्वत्पदाब्जे नतोऽस्म्यहम्।।३६।।

शिव जी ने कहा कि हे चम्पक पुष्पसदृश वर्णधारिणी देवि गायत्रि! आप सर्वदा शुद्ध चन्दन से चर्च्चिता तथा शुद्ध वस्त्रों को धारण करने वाली हो। आपके पद्मपाद में हम प्रणाम करते हैं।

मन्त्रयन्त्रमयि मातः! मुद्रया मोदसम्भवे!।
मुनिपुङ्गवपूज्यायै नमस्त्रिरूपशक्तये।।३७।।

मन्त्र तथा यन्त्रस्वरूपा माता गायत्री, आप बत्तीस संख्यात्मक मुद्राओं से तृप्ति प्राप्त करती हो। श्रेष्ठ मुनियों से पूज्या, तीनों शक्तिरूप को धरने वाली आपको नमस्कार है।

नारद उवाच

स्तुतिभिः परितुष्टा सा सुमेरुमगमत् ततः।
यथासुखं स्वयं शम्भुः कैलासे योगमास्थितः।।३८।।

नारद जी ने कहा- शिव जी की स्तुति से सन्तुष्ट होकर गायत्री देवी सुमेरु पर्वत को चली गयी तथा शिव जी भी अपनी इच्छा से कैलास पर्वत में योग में लीन हो गये।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
ब्रह्मविद्यास्वरूपकथनं नामैकादशोऽध्यायः

अथ द्वादशोऽध्यायः

(पंचमुखमाहात्म्यवर्णनम्)

ऋषय ऊचुः

भो मुने! योगतत्त्वं च ज्ञानवैभवदायकम्!।
त्रिकालदर्शी त्वं देव! सुरासुरैश्च पूजितः।।१।।
कथ्यतां महतांश्रेष्ठ गायत्रीं पंचवक्त्रिकाम्।
तस्याः स्वरूपं किं तावत्किं च वक्त्राभिनामकम्।।२।।

ऋषियों ने कहा कि हे योग के तत्त्व को जानने वाले, ज्ञान तथा ऐश्वर्य को देने वाले, तीनों कालों के ज्ञाता और देव तथा दानवों से पूजित समस्त ऋषियों में श्रेष्ठ नारद मुनि! आप पाँच मुख वाली उस गायत्री देवी के पाँच मुखों के नाम और उनके स्वरूप को कहो।

नारद उवाच

एकदा परमो विष्णुरपृच्छत् वेदमातरम्।
भवत्याः पंचवदनं केन रूपेण वा धृतम्।।३।।
कथं वा पूज्यसे लोके योगिभिर्योगसाधकैः।
कथय त्वं गूढ़तत्त्वं सारं तस्य विशेषता।।४।।

नारद जी ने कहा- एक बार परम विष्णु जी ने वेदमाता गायत्री जी से पूछा था कि आपने अपने पाँच मुखों को किस प्रकार से धारण किया था और योगसाधक योगी किस प्रकार से पूजा करते हैं, उस अत्यन्त रहस्यात्मक सारतत्त्व को विशेष रूप से कहो।

गायत्र्युवाच

शृणु देव रमाकान्त! गोपनं गूढ़ मे वचः।
ये मया धारिता मन्त्राश्चतुर्विंशतिसंख्यकाः।।५।।

गायत्री जी ने कहा- हे देव रमाकान्त! मेरे उस अतीव रहस्यात्मक तथा गोपनीय चतुर्विंशति वर्णसंख्यक मन्त्र को, जिसको कि मैं धारण की हुई हूँ उसे कह रही हूँ, आप सुनो।

मन्त्राणां पंचभागं तु आधारं मुखपंचकम्।
मन्त्रेणानेन संव्याप्तं विश्वमर्जुनबान्धव!।।६।।

हे अर्जुन के सखा! मेरे पाँचों मुख मन्त्र के पाँचों भाग के आधार हैं। इस मन्त्र से समस्त विश्व व्याप्त है।

ॐकारः प्रथमं मन्त्रं मन्त्राणां हि गुरुर्ध्रुवम्।
द्वितीयं भूर्भुवःस्वः च त्रिपुरं व्याप्यते सदा।।७।।

इसमें प्रथम ॐकार है। यह समस्त मन्त्रों का गुरु है, यह सत्य है। द्वितीय भूः, भुवः, स्वः है, जो हमेशा तीनों पुरों में व्याप्त होकर रहता है।

स्वर्गपातालमर्त्यानां जनानां मङ्गलेच्छया।
वहामि द्विमुखं नित्यं तेषां सर्वार्थसिद्धये।।८।।

मैं लोगों के समस्त प्रकार की सिद्धि-हेतु स्वर्ग, मर्त्य तथा पातालवासियों के लिये सर्वदा दो मुखों को धारण करती हूँ।

तत्सवितुर्वरेणीयं त्रिमुखं त्रिगुणान्वितम्।
मत्तृतीयं मुखं ध्यायन् सूर्यो जपति सर्वदा।।९।।

मेरा तृतीय मुख तत् सवितुर्वरेणीयं है। सत्त्व, रजस् तथा तमस्- इन तीनों गुणों से युक्त मेरे तृतीय मुख का ध्यान करके सूर्यदेवता हमेशा जप कर रहे हैं।

भर्गो देवस्य धीमहि ममाननश्चतुर्थकम्।
योगिनो ब्रह्मप्राप्त्यर्थं ध्यायन्ति नित्यमेव हि।।१०।।

मेरा चौथा मुख भर्गो देवस्य धीमहि है। इस मुख का ध्यान हमेशा योगी जन ब्रह्मप्राप्ति के निमित्त करते हैं।

धियो यो नः प्रचोदयात् मुखस्य पंचमन्त्रकम्।
पंचमङ्गं लभेत् सिद्धिं स्वयं मृत्युंजयः शिवः।।११।।

मेरा पाँचवाँ मुख धियो यो नः प्रचोदयात् है। स्वयं मृत्यु का जय करने वाले महादेव शिव जी ने इसका जप करके पंचांगसिद्धि को प्राप्त किया है।

मायामोहसमाच्छन्ना विस्मरन्ति नराः सदा।
मन्मन्त्रं चार्थमत्तत्त्वं मत्स्वरूपं च चिन्तनम्।।१२।।

मनुष्य सर्वदा माया तथा मोह से आच्छन्न होकर मेरे मन्त्र के स्वरूप, प्रकृत अर्थ, तत्त्व तथा चिन्तन का विस्मरण करते रहते हैं।

संसारवारिधौ मग्नाः पुण्यहीनाः नराधमाः।
नरकं यान्ति ते नित्यं यावत् चन्द्रदिवाकरौ।।१३।।

पुण्यहीन वे लोग संसाररूप समुद्र में पड़कर जब तक इस संसार में सूर्य और चन्द्र है तब तक निश्चित ही नरक को जाते हैं।

कोऽहमित्यनभिज्ञो यः मानवी तनुमाश्रितः।
किं तस्य मानवो जन्म किं च कर्त्तव्य तावकम्।।१४।।

इस संसार में जो मनुष्य शरीर को धारण करके मैं कौन हूँ? यह जानने में असमर्थ होता है, उसका मनुष्य जन्म तथा कर्त्तव्य व्यर्थ है।

क्षणभङ्गुरसंसारजन्ममृत्युबिबन्धनात् ।
मुक्तिं प्राप्स्ये चिन्तयित्वा भुनक्ति दुःखमेव हि।।१५।।

जो मुझे न जानकर इस क्षणभङ्गुर संसार के जन्म तथा मृत्यु के बन्धन से किस प्रकार से मुक्ति पा जाऊँगा- इस प्रकार चिन्तन करता है, वह निश्चित रूप से दुःख का ही भोग करता है।

यः सदा मनसा वाचा मद्वक्त्रं चिन्त्यते रहः।
सः मत्पुरं समागच्छेत् तिष्ठत्यत्र न संशयः।।१६।।

जो सर्वदा मन से बारम्बार मेरे मुख का चिन्तन करता है, वह मेरे पुर को आता है और यहाँ पर रहता है, इसमें सन्देह नहीं है।

प्राणिनां पंचभूतोऽहं पृथ्वीव्योमादिरूपिणी।
अणुपरमाणुरूपेण प्रतिगात्रेष्ववस्थिता।।१७।।

मैं प्राणियों के अन्दर पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि रूप से पंचभूत हूँ। साथ ही अणु, परमाणुरूप से प्रत्येक शरीर में वास करती हूँ।

आत्मानुशीलनं कृत्वा यो मां जपति माधव।
मायया रहितो भूत्वा मत्स्थानमधिगच्छति।।१८।।

हे माधव! जो स्वयं अपना अनुशीलन करके मेरा जप करता है, वह माया से रहित होकर मेरे स्थान को प्राप्त करता है।

जीवेषु पंचवक्त्राणि पंचकोशेषु संस्थिताः।
अन्नानन्दमयज्ञानप्राणश्चापि मनोमयाः।।१९।।

इस संसार में प्रत्येक जीव में मेरे पाँचों मुख, अन्नमयकोष, आनन्दमयकोष, ज्ञानमयकोष, प्राणमयकोष तथा मनोमयकोष- इस प्रकार पाँचो कोषों मे रहता है।

पंचेन्द्रियं पंचवह्नि पंचदेवात्मकं पुनः।
पंचमनः पंचक्लेशः पंचस्थितिः जनार्द्दन!।।२०।।

हे जनार्द्दन! मैं पाँचों इन्द्रियाँ, पाँचों अग्नियाँ, पाँचों देव, पाँच मन, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश आदि पाँच क्लेशों से पाँचो रूपों में अवस्थान करती हूँ।

इन्द्रियाँ—श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण।
अग्नि—आहवनीय, दक्षिणाग्नि, जातवेद, वायवीय,
देवता—गणेश, अम्बिका, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा।
मन—मन, अमन, विमन, कुमन, सुमन।
क्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश।

यो योगी पंचकोषं च प्रभेद्य ध्यायति सदा।
स सर्वबन्धनात् नूनं तिष्ठति निश्चलं सदा।।२१।।

जो योगी अन्नादि पाँचो कोषों का भेदन करके पृथक् भाव से ध्यान करता है, वह निश्चित ही समस्त प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर सर्वदा स्थितप्रज्ञ होकर रहता है।

अहं स्मृतिरहं मेधा वागस्मि धृतिरेव च।
मां विहाय क्षणं वापि कथं तिष्ठन्ति जीविनः।।२२।।

मैं स्मृति, मैं मेधा, मैं वाक् और भी मैं धृति हूँ। मुझे छोड़कर प्राणी क्षणमात्र भी कैसे रह सकता है?

गुरुविप्रपण्डिताश्च तत्त्वज्ञाः मुनिपुङ्गवाः।
मनसा चिन्तयित्वा मां त्रिकालज्ञाः भवन्ति वै।।२३।।

गुरु, ब्राह्मण और पण्डित, तत्त्वज्ञ और श्रेष्ठ मुनिगण मेरी मन से चिन्ता ना करके त्रिकालज्ञ होते हैं।

प्रेमस्वरूपां च पवित्ररूपां
जगद्विधात्रीं सितपद्महस्ताम्।
ज्ञानप्रदात्रीं शशिसूर्यनेत्रां
कृतांजलिर्वाचमुवाच विष्णुः।।२४।।

प्रेमस्वरूपा, पवित्रा, जगत् की सृष्टि करने वाली, चन्द्र तथा सूर्य-स्वरूप नेत्र वाली, ज्ञान प्रदान करने वाली, पद्महस्ता उस गायत्री देवी से हाथ जोड़कर विष्णु जी ने कहा।

विष्णुरुवाच

पंचमुखं दशबाहुं दर्शय त्वं सुरेश्वरि!।
येनाहं तृप्तिमाप्नोमि मनसा च स्वयम्भुवे!।।२५।।

हे सुरेश्वरी, स्वयं उत्पन्ना देवि गायत्रि! आप अपना पाँचो मुख तथा दश हस्त वाला स्वरूप दिखाओ, जिससे मैं मन से तृप्ति को प्राप्त करूँगा।

नारद उवाच

तत्क्षणादेव गायत्री विष्णोर्दशनदीत्सया।
व्यदधात् पंचवदनमपूर्वं भयकारकम्।।२६।।

नारद जी ने कहा कि वेदमाता गायत्री ने तत्क्षण ही विष्णु जी को दर्शन देने की इच्छा से भयोत्पादक अपूर्व पंचमुख-विशिष्ट स्वरूप को धारण किया।

दृष्ट्वेदं तादृशं रूपं विष्णुर्मोहेऽप्यवस्थितः।
चेतनां हृदि सम्प्राप्य कृतांजलिरभाषत।।२७।।

भगवान् विष्णु जी गायत्री जी के उस अपूर्व रूप को देखकर मोहग्रस्त हो गये और पुनः हृदय में चेतना प्राप्त कर हाथ जोड़कर बोले।

सर्वजीवगणास्तद्वत् नरकिन्नरराक्षसाः।
मात! ते हृदि राजन्ते इन्द्ररुद्रमरुद्गणाः।।२८।।

(विष्णु जी ने कहा) हे माता! उसी प्रकार समस्त जीवगण नर, किन्नर, राक्षस, इन्द्र, रुद्र, मरुत् आदि देवगण आपके हृदय में शोभा पा रहे हैं।

पर्वताः मेघचत्वारः समुद्राः दिक्प्रपालकाः।
नक्षत्राणि च शोभन्ते ततः नौमि सुरेश्वरि!।।२९।।

हे देवताओं की स्वामिनि! आपके हृदय में पर्वत, चारों मेघ (आवर्त्तक, संवर्त्तक, द्रोण, पुष्कर), सप्त समुद्र, दश दिक्पाल और अनन्त नक्षत्र शोभा पा रहे हैं। इसलिए आपको नमस्कार है।

अपूर्वं ते इदं रूपं कदा कोऽपि न पश्यति।
कृपया मां दर्शयसि शतं शतं नमाम्यहम्।।३०।।

आपके इस अपूर्व स्वरूप को किसी ने भी नहीं देखा है। मुझ पर कृपा करके मुझे दिखाया है। अतः आपको शत शत नमस्कार है।

त्वन्नाम जगति श्रेष्ठं मन्त्रं च जगदम्बिके।
तव ध्यानं कथं देवि! जपो वा केन कथ्यते।।३१।।

हे जगज्जननि! इस संसार में आपका नाम तथा मन्त्र श्रेष्ठ है। आपका ध्यान तथा जप किस प्रकार से कहा गया है।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः पंचमुखमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः
(कुण्डलिनीयोगकथनम्)

शिव उवाच

भो देवि! कथ्यतां मातः योगकुण्डलिनीं तथा।
यच्छ्रुत्वा श्रवणं तावत् सार्थकं मन्यते मया।।१।।

शिव जी ने कहा—हे देवि! कुण्डलिनी योग के विषय में कुछ कहो, जिसे सुनकर मैं अपने आपको सार्थक मानूँगा।

गायत्र्युवाच

श्रूयतां भो देवदेव! शक्तिं कुण्डलिनीं तथा।
कथयामि रहस्यं तद्यथापूर्वं तु सत्त्वरम्।।२।।

गायत्री जी ने कहा कि हे देवदेव महादेव! आप शक्ति कुण्डलिनी के विषय में सुनो। मैं यथापूर्वक उसके रहस्य को शीघ्र ही कह रही हूँ।

प्राणीनां जीवशक्तिश्च सर्वेषां वाक्स्वरूपिणी।
हृत्पद्मासनमध्यस्था कुण्डलिनी प्रकीर्त्तिता।।३।।

जो प्राणियों की जीवन शक्ति, सब की वाणी-स्वरूपिणी तथा सब के हृत्पद्म में रहने वाली है, वही कुण्डलिनी शक्ति के नाम से कही जाती है।

एषा स्वयं मूलाधारात् विद्यते मस्तकान्तरम्।
य एनां संयमेत् तावत्तस्य मोक्षं भवेद्ध्रुवम्।।४।।

यह कुण्डलिनी शक्ति स्वयं मूलाधार चक्र से लेकर मस्तक-पर्यन्त व्याप्त है। जो इसमें संयम करता है उसे निश्चित ही मोक्ष प्राप्त होता है।

सुप्तां कुण्डलिनीं शक्तिं य उत्थापयति शङ्कर!।
तापत्रयं षड्रिपवो न बाधन्ते कदाचन।।५।।

हे शङ्कर! जो साधक इस सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करावे, उसे तापत्रय एवं षड्रिपु कभी भी पीड़ा नहीं दे पाते हैं।

तमोगुणत्वमाधाय शरीरं निर्मितं तथा।
मांसास्थिरुधिरं मज्जाशौर्यवीर्यादिसंयुतम्।।६।।

मांस, अस्थि, रुधिर, मज्जा, शौर्य एवं वीर्य आदि से संयुक्त होकर तमोगुण का अवलम्बन करते हुये प्राणियों का शरीर निर्मित हुआ है।

विवेकबुद्धिमाश्रित्य विधाय मनसो यमम्।
तमोगुणं परित्यज्य स्वात्मानं परिचालयेत्।।७।।

साधक को विवेक वुद्धि के बल से अपने मन को संयत करते हुये तमोगुण को छोड़कर स्वकीय आत्मा का परिचालन करना चाहिये।

पंचभूतान् तु संयम्य संसाराद् दूरतः स्थितः।
आत्मदर्शी च स योगी प्राप्नोति ब्रह्ममन्दिरम्।।८।।

जो साधक संसार से दूर रह कर पंचभूतों का संयमन करता है, वह आत्मदर्शी योगी ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करता है।

जाग्रत्याः कुण्डलिन्याश्च प्राणाग्निः सृज्यते यदा।
शक्तिः कुण्डलिनी प्रोक्ता सदा मुनिगणोत्तमैः।।६।।

जब शक्ति के जाग्रत होने पर प्राणाग्नि की सृष्टि होती है, तव उस शक्ति को मुनिजन कुण्डलिनी कहते हैं।

तत्त्वज्ञैस्तत्त्वज्ञानार्थं चिन्त्यते सा दिवानिशम्।
कुण्डलिनीं न जानन्ति तेषां सिद्धिर्न जायते।।१०।।

तत्त्वज्ञानी तत्त्व के ज्ञान-निमित्त उस शक्ति का चिन्तन रात-दिन करते हैं। जो उस कुण्डलिनी शक्ति को नहीं जानता है, उसे सिद्धि नहीं होता है।

आत्मानं मन्यते न्यूनं परंब्रह्मांशसम्भवम्।
स नूनं परमात्मानं प्राप्नोति देव शङ्कर।।११।।

जो साधक परंब्रह्म के अंशभूत आत्मा को अवर मानता है, वह निश्चित ही परमात्म-भाव को प्राप्त करता है।

यैर्हृदान्तर्गतप्राणान् सोऽहं हंसः च चिन्त्यते।
जानन्ति बहिरङ्गाश्च प्राणवन्तो भवन्ति ते।।१२।।

जो साधक स्वकीय हृदयस्थ सोऽहं हंस को प्राण की तरह चिन्तन करते हैं, बाह्य में उसकी शक्ति को समझ सकते हैं, वे निश्चित रूप से प्राणवन्त होते हैं।

प्राणवतां हि प्राणीनां गौरवमभिवर्द्धते।
तामेव प्रतिभां तावत् वदन्ति मुनिपुङ्गवाः।।१३।।

जो प्राणवान् प्राणियों के गौरव को हर तरह से बढ़ाता है, उसे श्रेष्ठ मुनिजन प्रतिभा के नाम से कहते हैं।

सत्यं यस्य भूषणं च धीशक्तिर्यस्य विस्तृता।
शक्तिद्वयं समाधाय प्रतिभा स्वप्रकाशिता।।१४।।

जिस साधक मनुष्य का सत्य ही भूषण है तथा जिसकी धी शक्ति विस्तार को प्राप्त की हुई रहती है, उसमें इस शक्तिद्वय के एकत्र होने से प्रतिभा स्वयमेव प्रकाशित होती है।

ये तु क्रूरजनाश्चैव नित्यं साहसदर्शिनः।
प्रतिभाशालिनस्तांश्च न वदन्ति जितेन्द्रियः।।१५।।

जो दुष्ट क्रूर मनुष्य सर्वदा स्वकीय साहस को बाहर दिखाते हैं, उनको प्रतिभाशाली साधक जितेन्द्रिय नहीं कहते हैं।

नक्षत्राणि ग्रहाः सर्वे सूर्यलोके ज्वलन्ति च।
वनस्पत्यादयो जीवाः जीवन्ति प्राणवह्निना।।१६।।

समस्त ग्रह तथा नक्षत्र आदि सूर्यलोक द्वारा तेजस्विता को प्राप्त करते हैं और वनस्पति आदि जीवगण प्राणाग्नि के द्वारा ही जीवित होते हैं।

प्राणशक्तिः प्राणदात्री कुण्डलिनी प्रकीर्त्तिता।
सर्वेषां हृदि भासन्ती सर्वशक्तिषु सिद्धिदा।।१७।।

कुण्डलिनी शक्ति सबकी प्राणशक्ति प्राणदात्री के रूप से प्रसिद्ध है। वह सबके हृदय को उद्भासित करती है। समस्त शक्तियों की सिद्धिदायिनी शक्ति वही है।

ये विद्यासु परं श्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाश्च स्वयं नराः।
ते ऊर्ध्वरेतसो विज्ञाः मृत्युंजयाः भवन्ति हि।।१८।।

जो साधक समस्त विद्याओं में श्रेष्ठता को प्राप्त रहते हैं, वे साधक तत्त्वज्ञ, ऊर्ध्वरेतस् तथा ज्ञानी होकर मृत्युंजय होते हैं।

धीशक्तिर्विहीना लोकाः मोहनिद्रा वयं गताः।
न लभन्ते कुण्डलिनीं ममापि दिव्यदर्शनम्।।१९।।

बुद्धिशून्य मनुष्य मोहरूप निद्रा के वशीभूत होते हैं। वे कुण्डलिनी शक्ति को नहीं प्राप्त करते हैं तथा मेरा दर्शन भी नहीं कर पाते हैं।

कुण्डलिनीं परां शक्तिं यः पुमान् किल सिद्ध्यति।
नायान्ति तस्य सान्निध्यं कामक्रोधादिशत्रवः।।२०।।

जो साधक पराशक्ति कुण्डलिनी की सिद्धि प्राप्त करता है, उसके समीप काम-क्रोध आदि षड् शत्रु नहीं आ पाते हैं।

पंचभूतपरिव्याप्तं दृश्यमानं यथा जगत्।
प्राणाग्निचेतनश्चैव सर्वत्र परिविद्यते।।२१।।

जिस प्रकार समस्त जगत् पंचभूतों से परिव्याप्त है, उसी प्रकार प्राणरूप अग्नि सबके हृदय में परिव्याप्त है।

शक्तिरियं साधकानां जागर्त्ति हृदये यदा।
तदा तेषां पंचकोषाः प्रतिभां प्राप्नुवन्ति च।।२२।।

यह कुण्डलिनी शक्ति साधकों के हृदय में जब जाग्रत होती है, तब उनके पंचकोष (अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, विज्ञानमयकोष आदि) प्रतिभा से युक्त हो जाते हैं।

अन्नमयं शक्तिमयं मनोविज्ञानकं तथा।
आनन्दमयकोषांश्च सदा भवन्ति जाग्रताः।।२३।।

इस कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर अन्नमय कोष, मनोमय कोष, प्राणमय कोष, शक्तिमय कोष तथा विज्ञानमय कोष जाग्रत हो जाते हैं।

सोऽहं हंसः साधनेन भवन्ति स्वरसंयमम्।
ग्रन्थिभेदे यत्नशीलं साधूनां श्रेष्ठसाधनम्।।२४।।

सोऽहं हंसः इस मन्त्र के साधन से स्वरसंयमन हो जाता है। यह ग्रन्थियों के भेदन में यत्नशील साधुओं का श्रेष्ठ साधन है।

पंचतत्त्वात्मकेनैव पंचप्राणसमुत्थितम्।
पंचज्ञानेन्द्रियास्तेषां कार्यनिर्वहणे रताः।।२५।।

पंचतत्त्व एक आत्मा के रूप में परिणत होने पर पंच प्राण तथा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ स्वकीय कार्य करने में समर्थ होती हैं।

संसारशरीरे तावत् विभाजनमनेकधा।
सूक्ष्मक्रियाकलापेन योगयुक्ता भवन्ति च।।२६।।

इस प्रकार संसारस्थ शरीर अनेक प्रकार से विभाजित हुआ है। वे विभाग सूक्ष्म क्रियाओं से योगयुक्त हैं।

विघ्नहन्त्री शक्तिरियं योगिश्रेष्ठाः वदन्ति वै।
परत्रेह च जीवस्य तस्य दुःखं न विद्यते।।२७।।

श्रेष्ठ योगीगण इस कुण्डलिनी शक्ति को विघ्नों के लिये विनाशकारिणी कहते हैं। जो इस कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करता है, वह इहकाल तथा परकाल में कभी दुःखी नहीं होता है।

अहं कुण्डलिनी चैव गुणातीता प्रकीर्त्तिता।
जीवानां मातृरूपा च जगत्सु परिवाप्यते।।२८।।

मैं कुण्डलिनी शक्ति हूँ। मैं समस्त गुणों को अतिक्रम की हुई हूँ। मैं इस संसार में प्राणियों की माता के रूप से व्याप्त हूँ।

मम कुण्डलिनीं शक्तिं यो न साधयते शिव!।
मोक्षं न लभते सोऽपि साधुत्वेन न गण्यते।।२९।।

हे शङ्कर! जो साधक मेरी कुण्डलिनी शक्ति की सिद्धि नहीं

करते हैं, वे मोक्ष प्राप्त नहीं करते हैं; साथ ही वे साधु के रूप से गणित भी नहीं होते हैं।

भूर्लोकस्य कामधेनुर्विद्येऽहं सर्वमन्दिरे।
ये भक्त्या मां पूजयन्ति तेभ्यो दास्यामि तत्फलम्।।३०।।

मैं मर्त्यलोक में सबके घरों में कामधेनु के रूप में विद्यमान हूँ। जो भक्ति के साथ मेरी पूजा करते हैं, उनको मैं उसके फल देती हूँ।

मुने! कुण्डलिनीं शक्तिं गायत्र्युक्तवती शिवम्।
यः इमं शृणुते सम्यक् स मोक्षत्वमवाप्नुयात्।।३१।।

हे ऋषि! इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति के विषय में गायत्री जी ने शिव जी से कहा था। जो इसको भली-भाँति सुनता है, वह मोक्षपद को प्राप्त करता है।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
कुण्डलिनीयोगकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः

अथ चतुर्द्दशोऽध्यायः
(योगकथनम्)

ऋषय ऊचुः

ज्ञानज्ञ भो ऋषिश्रेष्ठ! त्रिज्ञाततत्त्वशोभित!।
हरेः कीर्त्तनविश्वासिन्! महती वादनप्रिये!।।१।।
कथय योगमार्गं तु मोक्षज्ञानप्रदायकम्।
ब्रह्माविष्णुशङ्करश्च यां ध्यायन्ति निरन्तरम्।।२।।

ऋषियों ने कहा– हे ऋषिश्रेष्ठ ज्ञानज्ञ! तीनों कालों को देखने वाले, तत्त्वज्ञानी, हरिनाम--कीर्त्तन में विश्वासी, महती वीणा के वादन में आसक्त नारद महर्षि! आप मोक्ष को देने वाले योगमार्ग को कहो। जिस मार्ग का ध्यान हमेशा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर आदि करते हैं।

नारद उवाच

ऋषयः गूढ़तत्त्वेमं यत् पृच्छथ ममाग्रतः।
तावत्ते कथयिष्यामि शृणुध्वं तद्यथायथम्।।३।।

नारद जी ने कहा– हे ऋषिगण! आप लोग जो यह गूढ़तत्त्व को पूछ रहे हैं, उसे मैं यथायथ बता रहा हूँ। आप लोग सुनें।

पूर्वकाले महादेव सन्तिष्ठन् देविसन्निधौ।
पप्रच्छ भो जगन्मातः कथय योगविस्तृतम्।।४।।

पूर्वकाल में महादेव शिव जी ने देवी गायत्री जी के समीप में रहकर पूछा था कि हे जगन्माता! योग के विषय मुझसे विस्तृत रूप से कहो।

गायत्र्युवाच

परमात्मात्मनोर्योगं योगिभिर्योग उच्यते।
बहिरङ्गोऽन्तरङ्गश्च द्विधा चैव विभज्यते।।५।।

गायत्री जी ने कहा- परमात्मा के साथ जीवात्मा का योग होना ही योगियों ने योग कहा है। यह बहिरङ्ग तथा अन्तरङ्ग के भेद से दो प्रकार का होता है।

प्राणायाममासनं च न्यासमुद्राजपादिकम्।
होमतीर्थादिपूजनं च बहिर्योगं प्रचक्षते।।६।।

प्राणायाम, आसन, न्यास, मुद्रा, जप, होम, तीर्थयात्रा तथा पूजन आदि बहिरङ्ग योग के नाम से कहे जाते हैं।

मनः प्राणैकस्थानं च स्थापनाभ्यन्तरं भवेत्।
य एवं चिन्तयेन्नित्यं स नूनं योगसाधकः।।७।।

मन को प्राण के साथ एक स्थान में स्थापन करना ही अन्तरङ्ग योग कहलाता है। जो साधक इसका प्रतिदिन चिन्तन करता है, वह निश्चय ही योगसाधक है।

योगासने उषित्वा तु द्वियोगं कुरुते नरः।
स मां पश्यति सर्वत्र नास्ति सन्देहकारणम्।।८।।

जो साधक मनुष्य योगासन में बैठकर बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग- इन दोनों प्रकार के योगों का अनुष्ठान करता है, वह हर जगह मुझे देखता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जितेन्द्रियो योगिश्रेष्ठः स्वल्पाहारी हितंकरः।
सुषुम्णानाड़ीसंच्छन्नं सर्वं मन्दं विशुद्ध्यति।।९।।

जितेन्द्रिय, स्वल्पाहारी, सबके हित करने वाले योगिश्रेष्ठ सुषुम्ना नाडी में रहने वाले हर तरह के मल का शोधन करते हैं।

पद्मासनेऽप्यवस्थाय तथा चान्द्रायणेऽपि च।
वायुशक्तिं यथा साध्यं कुर्यात् संस्थाप्य कुम्भकम्।।१०।।

पद्मासन में बैठकर चन्द्रस्वर के समय में साध्यानुसार वायु शक्ति को रोककर कुम्भक करना चाहिए।

रोचयेत् सूर्यमार्गेण पूरयेत् तत्पथादिना।
पुनश्च कुम्भकं कृत्वा चन्द्रमार्गेण रेचयेत्।।११।।

सूर्यमार्ग से रेचन करके कुम्भक करते हुए चन्द्रमार्ग से पूरक करना चाहिए। फिर चन्द्रमार्ग से रेचन करते हुए कुम्भक करके सूर्यमार्ग से पूरक करना चाहिए।

एवंविधिं समाश्रित्य य कुर्यात्तप सत्तमम्।
कापि चिन्ता न विद्येत भुवि तस्य कदाचन।।१२।।

इस प्रकार विधि का अवलम्बन करते हुये जो उत्तम तपस्या करता है, उसको इस पृथिवी पर किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती है।

स्वल्पदण्डप्रदानेन वशं गच्छन्ति श्वापदाः।
मन्दं मन्दं सुसंयम्य वायुः संरक्ष्यते सदा।।१३।।

जिस प्रकार स्वल्प दण्ड के प्रदान से भयंकर पशु भी वश में होते हैं, उसी प्रकार धीरे-धीरे वायु को संयत करके उसे वश में किया जाता है।

त्रिसन्ध्यायां जपन्तीह पुण्यदां वेदमातरम्।
न तेषां जायते दुःखं न च क्लेशैः स लिप्यते।।१४।।

जो मनुष्य पुण्यप्रदानकारी वेदमाता गायत्री जी का जप तीनों सन्ध्याओं में करते हैं, उनको किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होता है और वे क्लेशों से संलिप्त नहीं हो पाते हैं।

शनैर्वायुः संयमनं समाधियोग उच्यते।
अनेन विधिना जीवः पश्यति परमात्मकम्।।१५।।

धीरे-धीरे वायु के संयमन को समाधि योग कहते हैं। इस प्रकार इस साधन से जीवात्मा परमात्मा का दर्शन करता है।

आत्मा नित्यः जगद्व्याप्तो सर्वदोषविवर्जितः।
एक एव भवेत् सत्यं मायया बहु मन्यते।।१६।।

आत्मा नित्य, सत्य तथा समस्त संसार को व्याप्त करके स्थित है। वह हर तरह से दोषों से रहित है तथा सत्य है। परन्तु माया के कारण अनेक है।

न तत्र विद्यते भेदः न तद्रूपं विलोक्यते।
सत्यमद्वैतभावं च प्रपंचभ्रम एव च।।१७।।

आत्मा में भेद विद्यमान नहीं है, उसके रूप को कोई देख नहीं सकता। वह सत्य एवं अद्वैत है। माया केवल भ्रमभाव को प्रकाशित करता है।

ततो ज्ञानविहीनास्तु द्विधा वदन्ति चेश्वरम्।
जीवः एकतमस्तावद् द्वितीयं ब्रह्म केवलम्।।१८।।

इसलिए ज्ञानहीन लोग ईश्वर को द्विविध कहते हैं। जैसे- जीवात्मा और परमात्मा। एक जीवात्मा तथा द्वितीय परंब्रह्म है।

आत्मनो देहप्राणांश्च बहुधा ज्ञायते नरैः।
केवलं परमात्मा तु एक एव विशिष्यते।।१९।।

लोग स्वकीय देह तथा आत्मा को ही बहुत मानते हैं; परन्तु केवल परमात्मा ही विशेषता को प्राप्त करता है।

यस्य एवंविधा बुद्धिः समाधिः निश्चयात्मिका।
य एवं मनसा ध्यायेत् स नूनं साधुरुत्तमः।।२०।।

जिसमें इस प्रकार की निश्चयात्मिका बुद्धि उत्पन्न होती है तथा मन से केवल परमात्मा का ही ध्यान करता है, वह निश्चय ही श्रेष्ठ साधु है।

योगेश्वरी अहं ब्राह्मी विश्वस्य पालिकास्म्यहम्।
मायापाशनिबद्धेन पतिता मानुषी न हि।।२१।।

मैं योगेश्वरी तथा ब्राह्मी हूँ। मैं संसार की पालनकर्त्री हूँ; माया के बन्धन में पड़ने वाली साधारण नारी नहीं हूँ।

मद्भिन्नवस्तुनः कस्य न चास्तित्वं हि विद्यते।
अहं सर्वत्र तिष्ठामि सर्वजीवनिवासिनी।।२२।।

मुझसे भिन्न किसी भी पदार्थ का अस्तित्व—सत्ता नहीं है। मैं समस्त जीवों में हर जगह विद्यमान रहती हूँ।

सागरोत्थं यथा फेनं तरंगेणाधिगच्छति।
तथा जगत् मदुत्पन्नं मदन्तः परिलीयते।।२३।।

जिस प्रकार सागर से उठने वाला फेन लहरों के साथ सागर

में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार मुझसे उत्पन्न यह जगत् भी मुझमें ही लीन हो जाता है।

तस्मान्मायामयं विश्वं मद्भिन्नं न तु विद्यते।
य एवं परमात्मानं निजात्मैव विचार्यते।।२४।।
सोऽमृतं च परंब्रह्म परं धाम परात्परम्।
सम्प्राप्य योगिपूज्यश्च लभते ब्रह्मणः स्थलम्।।२५।।

इसलिए माया से आच्छन्न यह विश्व मुझसे भिन्न नहीं है। जो इस प्रकार परमात्मा को स्वकीय आत्मा की भाँति मानता है, वह अमरत्व की प्राप्ति करते हुये परंब्रह्म परात्पर श्रेष्ठ धाम का लाभ कर योगियों से पूज्य होकर ब्रह्मस्थान को प्राप्त करता है।

यदाऽऽत्मज्ञानतत्त्वज्ञाः सर्वान् जीवान्समन्ततः।
हृदयेऽस्मिन् प्रपश्यन्ति ते नूनं ब्रह्मदर्शिनः।।२६।।

जब आत्मज्ञान-लब्ध मनुष्य अपने हृदय में समस्त प्राणियों को देखते हैं तब वे निश्चय ही ब्रह्मदर्शी होते हैं।

यदा समाधिमापन्नाः पुरुषाः ब्रह्मवादिनः।
स्वभिन्नं न च पश्यन्ति आत्मानं परमात्मनः।।२७।।
तदा ते परमात्मानः कथ्यन्ते मुनिसत्तमैः।
आत्मा हि केवलं सत्यं मन्यन्ते ते तथा परम्।।२८।।

जब ब्रह्मवादी मनुष्य समाधिलाभ करके परमात्मा को अपने आत्मा से भिन्न नहीं स्वीकार करते हैं, तब श्रेष्ठ मुनिगण उन्हें परमात्मा ही कहते हैं। उसके बाद वे केवल आत्मा को ही सत्य के रूप में मानते हैं।

क्रीड़ामात्रं विश्वमाया तैरेव चिन्त्यते यदा।
परंब्रह्म परंधाम तदा तैरेव लभ्यते।।२९।।

जब वे मनुष्य संसार की माया को परमात्मा की क्रीड़ाभूमि की भाँति सोचते हैं, तब वे निश्चय ही परंब्रह्म परमात्मा के धाम को प्राप्त करते हैं।

यस्य न भवति नाशः सूक्ष्मातिसूक्ष्मकौशलैः।
यद्दर्शनं न लक्ष्यते स ब्रह्म उच्यते बुधैः।।३०।।

जिसका नाश नहीं होता है, जिसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म कौशल से भी दर्शन नहीं होता है, उसे ज्ञानी लोग ब्रह्म कहते हैं।

अहं ब्रह्मास्मि सत्यं तु जानीहि त्वं महेश्वर!।
मदृतेऽस्मिन् जगत्येव न विद्यते कदाचन।।३१।।

हे महेश्वर! मैं ब्रह्म ही हूँ, ऐसा आप सत्य जानो। मुझसे भिन्न इस जगत् में कुछ भी नहीं है।

कल्पनावादिनो लोकाः सदा भौतिकतृष्णया।
असंयमत्वमास्थाय मोहग्रस्ताः भवन्ति च।।३२।।

कल्पनावादी लोग हमेशा भौतिक तृष्णा से असंयत होकर मोहग्रस्त होते हैं।

ततस्ते योगतपसो न च तत्त्वार्थभेदिनः।
कामेन पीड़िताः सन्तः स्वस्वरूपं न गण्यते।।३३।।

अतः योग और तपस्या के तत्त्व का भेदन न कर सर्वदा कामना से पीड़ित होकर लोग अपने स्वरूप को भी नहीं जान पाते हैं।

ते कदा मां न जानन्ति मच्छक्तिस्तैर्न भिद्यते।
निमग्ना दुःखकष्टेषु मायागुम्फितचेतसः।।३४।।

वे कभी भी मुझे जान नहीं पाते हैं। मेरी शक्ति के तत्त्व का भी भेदन नहीं कर पाते हैं। वे सर्वदा माया से आबद्ध होकर दुःख और कष्ट में निमग्न रहते हैं।

त्रिसन्ध्यायां त्रिरूपं च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
यो जनः वन्दते नित्यं ब्रह्म तेनैव लभ्यते।।३५।।

जो साधक तीनों सन्ध्याओं में ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपक त्रिविध रूप की प्रतिदिन वन्दना करता है, वह निश्चित रूप से ब्रह्म को पाता है।

मन्त्रैर्यन्त्रैस्तथा तन्त्रैः कैरहं न निबध्यते।
ये मां भजन्ति भावेन तैर्बद्धोऽहं सदा भवेत्।।३६।।

मुझे मन्त्र, यन्त्र तथा तन्त्र से बाँध कर नहीं रखा जा सकता

जो मेरा भावपूर्वक भजन करता है, वही मुझे बाँध सकता है।

योगजपतपादीनि सृज्यन्ते मच्छरीरतः।
मां विहाय कदा एको न तिष्ठति धरातले।।३७।।

मेरे शरीर से योग, जप, तप आदि उत्पन्न हुये हैं। इस पृथिवीतल पर मुझसे अतिरिक्त कोई भी एक नहीं है।

गृहधर्मं समाश्रित्य यो मां भजति नित्यशः।
स सर्वजनपूज्योऽत्र संशयो नास्ति शङ्कर!।।३८।।

जो गृहस्थ धर्म का आश्रय करते हुये सर्वदा मेरा भजन करता है, वह सबका पूज्य होता है, इसमें संशय नहीं है।

सर्वारम्भान् परित्यज्य यो मत्कर्म करोति च।
जराव्याधिभयक्लेशाः नागच्छन्ति तदन्तिकम्।।३९।।

जो समस्त सांसारिक कर्मों को छोड़कर मेरे कर्म का अनुष्ठान करते हैं, उनके समीप जरा, व्याधि, भय, क्लेश आदि कभी नहीं आते हैं।

त्वां तत्प्रज्ञापरां देवीं शाश्वतीं शान्तिरूपिणीम्।
विश्वसृष्टिविधात्रीं च ज्ञानवैभवदायिनीम्।।४०।।
सर्वकर्म क्रियाशक्तिं गायत्रीं लोकमातरम्।
श्रेष्ठां यज्ञनुतां देवीं नमामि वरदां शिवाम्।।४१।।

शिव जी ने कहा—हे गायत्री देवि! आप श्रेष्ठा, नित्या, शान्तिस्वरूपिणी, जगत् की सृष्टिकारिणी, ज्ञान देने वाली, वैभव देने वाली, समस्त कर्मों में शक्तिरूपिणी, यज्ञ में पूज्या, लोकमाता, वर देने वाली, मङ्गलमयी हो। आपको हम नमस्कार करते हैं।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः योगकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः

अथ पंचदशोऽध्यायः

(मन्त्रभेदकथनम्)

गायत्र्युवाच

शृणु देव उमानाथ! गूढ़तत्त्वाभिधानकम्।
यं श्रुत्वा जीवसकलं लभते परमं पदम्।।१।।

गायत्री जी ने कहा, हे उमानाथ शिव जी! आप मेरे गूढ़तत्त्व को सुनो, जिसको सुनकर जगत् के प्राणी परम पद को प्राप्त करते हैं।

प्राक्प्रणवं समानीय मन्मन्त्रं यः पठेत् शिव!।
स योगी योगिनां श्रेष्ठः ब्रह्मज्ञानी सदा भवेत्।।२।।

हे शिव जी! प्रथम प्रणव का उच्चारण करते हुये जो मेरे मन्त्र का जप करता है, वह योगियों में श्रेष्ठ होकर ब्रह्मज्ञानी होता है।

अविद्या सवितुर्वर्णा तेजोयुक्ता जगन्मयी।
सच्चिदानन्दरूपिणी अग्निनेत्रा प्रियङ्करी।।३।।

शिव जी ने कहा- आप अविद्या तथा सूर्यरूपा तेजोयुक्ता हो। आपमें समस्त जगत् व्याप्त है। आप नित्य आनन्द देने वाली हो। आपके अग्नि नेत्र हैं। आप सबका मष्ल करने वाली हो।

भो मातः अभये देवि! वदामि संशयं मम।
मन्त्राणां गूढ़तत्त्वं च किं च तेषां स्वरूपकम्।।४।।

हे अभय देने वाली माता! मैं अपने सन्देह के विषय को कह रहा हूँ। मन्त्रों के गूढ़तत्त्व तथा उनका स्वरूप कैसा है, उसे कहो।

गायत्र्युवाच

चतुर्विंशाक्षरं मन्त्रं मनसा चिन्तयेत्तु यः।
सद्ज्ञानसरितः स्रोतो वहति हृदयान्तरे।।५।।

गायत्री जी ने कहा- मेरे चौबीस अक्षरात्मक मन्त्र का जो चिन्तन करता है, उसके हृदय में सद्ज्ञानरूपी नदी का स्रोत प्रवाहित होता है।

अभेद्यं च अच्छेद्यं च निराकारं निरन्तरम्।
ध्यानात्मकं तत्प्रणवं विश्वात्मा विश्वव्यापकम्।।६।।

वह प्रणव अभेद्य और अच्छेद्य है। वह सर्वदा आकारशून्य तथा विश्व की आत्मा एवं विश्व को व्याप्त किया हुआ है। वही प्रणव ध्यान की आत्मा है।

प्राणान् भूः कथ्यते नित्यं प्राणीनां सर्वव्यापकम्।
अतः सर्वे समानाश्च सर्वान् समं निगद्यते।।७।।

प्राणियों के शरीर में व्याप्त प्राणों को नित्य 'भू' कहते हैं। अतः सबके प्राणतत्त्व समान हैं। साथ ही विद्वान् भी इस प्राण को समान के नाम से ही कहते हैं।

उचितानुचितं किंचित् अविचिन्त्य च मत्परः।
यो मां चिन्तयते नित्यं समदर्शी स साधकः।।८।।

जो उचित तथा अनुचित का विचार न करते हुये अथवा अन्य चिन्तन छोड़कर सर्वदा मेरा ही चिन्तन करता है, वह समदर्शी साधक होता है।

भुवि कर्म तत्परत्वं भुवः इति प्रचक्षते।
यत्कर्म सततं कुर्यादाचारशुद्धभावितः।।९।।
असत्सङ्गं वर्जयित्वा मत्कर्माणि करोति यः।
कार्यदक्षो महाज्ञानी कर्मयोगी स उच्यते।।१०।।

इस पृथिवी पर निरन्तर कर्म-तत्परता को 'भुवः' कहा गया है। जो मनुष्य शुद्ध आचार भावना से अपने कर्त्तव्य को करता है तथा जो असत् सङ्ग को छोड़कर मेरे कार्य का निष्पादन करता है, वह कार्यदक्ष, ज्ञानी तथा श्रेष्ठ कर्मयोगी के नाम से गण्य होता है।

स्वशब्देन मनःस्थैर्यमुच्यते योगसाधकैः।
विधीमं परिसंचाल्य शान्तिमाप्नोति च स्वयम्।।११।।

योगसाधक 'स्व' शब्द से मन के स्थैर्यभाव को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार विधि को सञ्चलित करने वाला मनुष्य भी स्वयं शान्ति एवं स्थिरता को प्राप्त करता है।

तत् पदात् शिक्षते योगी जन्ममृत्युविचारकम्।
अतस्तत्र न संसक्तः स्वर्गतिः क्रियते ततः।।१२।।

योगीजन 'तत्' पद से जन्म तथा मृत्यु के विचार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। अतः योगी मृत्यु तथा जन्म में निमग्न न होकर स्वर्गगामी होते हैं।

सवितुर्वादिनो लोकास्तेजवन्तो भवन्ति च।
इन्द्रियाणि पराजित्य चिन्तयन्ति सदात्मनः।।१३।।

'सवितुः' इस पद का उच्चारण करने वाले व्यक्ति तेजस्वी होते हैं, साथ ही वे इन्द्रियों को पराजित करके सर्वदा आत्मा का चिन्तन करते हैं।

सूर्य रेतः रजो भूमिः कथ्यते मुनिपुङ्गवैः।
सूर्याच्च शक्तिमानीय कार्यं जातं च कुर्महे।।१४।।

श्रेष्ठ मुनिगण सूर्य को शुक्र तथा पृथिवी को रज कहते हैं। हम भी सूर्य से शक्ति ग्रहण करके समस्त कार्य करते हैं।

वरेण्यं शब्दखण्डं च कथ्यते भो महेश्वर!।
सर्वत्र सर्वस्मिन् काले श्रेष्ठचिन्तनकं तथा।।१५।।

हे महेश्वर! 'वरेण्य' शब्दखण्ड सर्वदा सर्वत्र श्रेष्ठ चिन्तन कराता है।

महत्कार्यं महद्दृश्यं महत् शिक्षा तथा परम्।
आत्मानं श्रेष्ठमन्वानः कुर्यान्मन्मन्त्रपूजनम्।।१६।।

इस 'वरेण्य' पद को महत् कार्य, महत् दृश्य, महत् शिक्षा देने वाला होने से मनुष्य अपने-आपको श्रेष्ठ मानते हुये मेरे मन्त्र का पूजन हमेशा करता है।

भर्गो द्विवर्णमात्रार्थं यश्चिन्तयति मानवः।
नाशयेत् शङ्कर! स हि पूर्वदुष्कृतमात्मनः।।१७।।

हे शङ्कर! 'भर्गो' इन दो वर्णों का निष्पाप भाव से जो चिन्तन करता है, वह अपने पूर्व दुष्कृतों का नाश कर देता है।

आचारहीनो घृण्यश्च पापकर्म न पश्यति।
पापान्पातकपर्यन्तं चागच्छति यथाक्रमम्।।१८।।

'भर्गो' पद के पाठ करने से मनुष्य आचारहीन, घृणायोग्य पाप कर्म का आचरण नहीं कर पाता है। अन्यथा सामान्य पाप से महापातक तक यथाक्रम उसकी गति होती है।

अतो निष्पापहृदयं सर्वदा चिन्तयाम्यहम्।
अन्तर्भावं समर्प्यैव मामेकं शरणं व्रज।।१९।।

अतः मैं सर्वदा पापशून्य हृदय का चिन्तन करती हूँ। आप अपने निष्पाप हृदय को मुझे समर्पित करके मेरी ही शरण को ग्रहण करो।

देवस्येति पदं तावत् शिक्षां ददाति शङ्कर!।
प्राणीनां सेवनं कार्यं परमार्थपरायणम्।।२०।।

हे शङ्कर! 'देवस्य' यह पद परमार्थ-परायण होकर प्राणियों के सेवाकार्य की शिक्षा देता है।

निर्बलानां बली भूत्वा सर्वकर्माणि तत्परः।
मृत्युगान् मानवान् नूनममरत्वं प्रयच्छति।।२१।।

यह 'देवस्य' पद शक्तिहीन मनुष्यों का बल होकर मृत्युगामी मनुष्यों को अमरत्व प्रदान करता है।

धीमहि धारयेद् हृदि पूर्णशक्तिं प्रदास्यति।
सर्वेषां प्राणिजातानां शृणुष्व तत्स्वरूपकम्।।२२।।

'धीमहि' यह पद प्राणियों के हृदय में पूर्ण शक्ति प्रदान करता है। उसके स्वरूप को मैं कह रही हूँ, आप सुनो।

इमां शक्तिं विना तावत् मनुष्यो न सुखी भवेत्।
सुखशान्तिप्रदात्रीं च तां नमस्व महेश्वर!।।२३।।

इस 'धीमहि' शक्ति के विना मनुष्य कथमपि सुखी नहीं हो

सकता। अतः हे महेश्वर! सुख तथा शान्ति प्रदान करने वाली उस धीमहि शक्ति को नमस्कार करो।

धियो धैर्यं रक्षणाय चेष्टतेऽस्मिन् कलेवरे।
दधिभाण्डं मन्थनेन नवनीतं च जायते।।२४।।

'धियो' पद हम लोगों के धैर्य के रक्षण-हेतु चेष्टित रहता है। जिस प्रकार दधि के मन्थन से नवनीत निकलता है।

सर्वशास्त्रसमुद्भूतं तत्त्वार्थं च सुपण्डितैः।
तन्नीत्वा शुद्धबुद्ध्या च चिन्त्यते देवदर्शनम्।।२५।।

उसी प्रकार उत्तम पण्डित समस्त शास्त्रों के अध्ययन से उत्पन्न प्रकृत तत्त्व को शुद्ध बुद्धि से ग्रहण करके देवताओं के दर्शन का चिन्तन करते हैं।

यो नः शब्दखण्डमेव कथ्यते शृणु शङ्कर!।
स्वार्जिततपःशक्तिं च परार्थे तु नियोजयेत्।।२६।।

हे शङ्कर! 'यो नः' शब्दखण्ड के विषय में कह रही हूँ। आप सुनो। यह 'यो नः' शब्दखण्ड स्व अर्जित तपस्या की शक्ति के अन्य को प्रयोजन में विनियोग करने के लिए शिक्षण दे रहा है।

जनमङ्गलकार्यं तु निर्धनेभ्यो धनं तथा।
देहि स्वार्थात् स्वल्पमेव मुक्तित्वं प्राप्स्यसि खलु।।२७।।

यह लोगों के लिये मङ्गलकर कार्य के लिए तथा निर्धन लोगों को धन देने के लिए शिक्षण दे रहा है। इस प्रकार से आचरण करने पर निश्चय ही मुक्ति प्राप्त होती है।

प्रचोदयात् मन्त्रमिदं सन्मार्गं दर्शयेत् सदा।
स्वात्मानं तेन मार्गेण परिचालयं शङ्कर!।।२८।।

'प्रचोदयात्' यह पद सर्वदा उत्तम मार्ग ही दिखाता है। अतः हे शङ्कर! उस मार्ग से अपने आपको परिचालित करो।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः मन्त्रभेदकथनं नाम पंचदशोऽध्यायः

अथ षोडशोऽध्यायः
(ज्ञानयोगकथनम्)

ऋषय ऊचुः

ज्ञानप्रेमश्च तन्त्राणां गुरूणां गुरुरीश्वर!।
ब्रह्मपुत्र गुणातीत! देवर्षे! देववन्दित।।१।।
त्रिपुराणां च वृत्तान्तं सत्त्वरं गदितुं क्षमः।
ततः परं च गायत्र्याः ज्ञानयोगं वदस्व नः।।२।।

ऋषियों ने कहा- हे ज्ञानगुरु, प्रेमगुरु, तन्त्रगुरु, ब्रह्मापुत्र, देवपूज्य देवर्षि नारद! आप तीनों लोकों के वृत्तान्त को कहने में समर्थ हो। अतः वेदमाता गायत्री जी के ज्ञानयोग के विषय को हम लोगों के सामने कहो।

नारद उवाच

गायत्र्येव ज्ञानगङ्गा सर्वज्ञानाधिकारिणी।
सूक्ष्मभावेन सा देवी सर्वत्रैव विराजते।।३।।

नारद जी ने कहा- गायत्री जी ज्ञान की गंगा है और समस्त प्रकार के ज्ञान की अधिकारिणी है। वह देवी हर जगह सूक्ष्म भाव से रहती है।

शृण्वन्तु भो ऋषिश्रेष्ठाः गायत्र्याः ज्ञानविस्तरम्।
एकदा वेदजननीं परिपृच्छति शङ्कर!।।४।।

हे श्रेष्ठ ऋषिगण! गायत्री जी के ज्ञान-विषय को विस्तार से सुनो। इसके सम्बन्ध में एक बार शङ्कर जी ने वेदमाता गायत्री जी से पूछा था।

भो मातः! वैष्णवि शक्ते मन्त्राणां गुरुरीश्वरि।
तावत् कथय किं ज्ञानं किं रूपं त्वय्यवस्थितम्।।५।।

शङ्कर जी ने कहा– हे माता वैष्णवी शक्ति! समस्त मन्त्रों की गुरु ईश्वरी आप हो। अतः ज्ञान क्या है? किस प्रकार का है? किस रूप से हम आप में अवस्थान करते हैं? उसे कहो।

गायत्र्युवाच

शृणु देव शितिग्रीव! यत् पृच्छसि ममाग्रतः।
ज्ञानमज्ञानकं वापि सर्वत्राहं व्यवस्थिता।।६।।

गायत्री जी ने कहा– हे महादेव! आपने मेरे सामने जो पूछा है, उसे सुनो। मैं ज्ञान तथा अज्ञान भाव से हर जगह रहती हूँ।

शक्त्याहं परमात्मानः सर्वत्र परिपूज्यते।
सृष्टिस्थितिनाशरूपा सृजाम्यहं चराचरम्।।७।।

मैं परमात्मा की शक्तिरूप से हर जगह पूजित हूँ। मैं सृष्टि, स्थिति तथा विनाशक के रूप से इस चराचर की सृष्टि करती हूँ।

विष्णुनाभ्युत्थितो ब्रह्मा मम शक्तिबलेन वै।
जङ्गमस्थावरादीनां सृष्टिं करोमि शङ्कर!।।८।।

भगवान् विष्णु जी की नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा जी मेरी शक्ति के बल से समस्त स्थावर और जङ्गम आदि प्राणियों की सृष्टि करते हैं।

ऋषयो मुनयो विप्रास्तिस्रोऽवस्था ममैव च।
ध्यात्वा सर्वशास्त्रदक्षास्त्रिकालज्ञाः भवन्ति वै।।९।।

ऋषि, मुनि और विप्रगण मेरी तीनों अवस्थाओं का ध्यान करके समस्त शास्त्रों में दक्ष एवं त्रिकालज्ञ होते हैं।

अहं ज्ञानप्रदा ब्राह्मी तेजोमयी हुताशनी।
ह्लीं क्लीं श्लीं बीजरूपा तु सर्वशक्तिसमन्विता।।१०।।

मैं ज्ञान प्रदान करने वाली ब्राह्मी हूँ। मैं ही तेजोमयी हुताशनी हूँ। साथ ही मैं ही ह्लीं क्लीं श्लीं त्रिबीज रूप से समस्त शक्ति से समन्वित हूँ।

सूक्ष्मतान्त्रिकशक्तिश्च शान्तिमुक्तिप्रदायिनी।
मम मन्त्रं मोक्षमार्गं नास्ति संशय शङ्कर!।।११।।

मैं सूक्ष्म तान्त्रिक शक्ति एवं सबको शान्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाली हूँ। मेरा मन्त्र मोक्ष का मार्ग है। हे शङ्कर! इसमें कोई संशय नहीं है।

अकारं च उकारं च मकारं चाक्षरत्रयम्।
ध्यानं करोति यो योगी स मुक्तिं लभते ध्रुवम्।।१२।।

जो योगी अकार, उकार और मकाररूप इन तीनों अक्षरों का ध्यान करता है, वह निश्चित ही मुक्ति को प्राप्त करता है।

जगत्सु सर्वद्रष्टाहमिन्द्रियरहितापरम्।
ज्ञानबुद्धिक्रियायुक्ता परंनिर्गुणरूपिणी।।१३।।

मैं जगत् में सब कुछ देखने में समर्थ हूँ। साथ ही मैं इन्द्रियशून्य, ज्ञान-बुद्धि में क्रियायुक्त तथा गुणशून्य हूँ।

अखण्डानन्दरूपा च प्रेमाङ्गी सर्ववन्दिता।
अच्छेद्याऽहं शून्यासीना हंकारात् दूरसंस्थिता।।१४।।

मैं अखण्डानन्दरूपा, प्रेमाङ्गी, सबसे पूज्या हूँ। मैं अच्छेद्या, शून्यासीना तथा अहङ्कार से दूर रहती हूँ।

जीवश्च निर्जीवश्चाहं ध्यानमार्गात्तथा परम्।
मन्त्रे यन्त्रे न तिष्ठामि न च स्वार्थे तथैव च।।१५।।

मैं जीव और निर्जीव हूँ तथा मुझे परम ज्ञान ध्यान मार्ग से प्राप्त किया जा सकता है। मैं न मन्त्र में, न यन्त्र में हूँ। न तो मेरा कोई स्वार्थ है।

वेदेष्वपि पुराणेषु विद्येऽहं वाक्स्वरूपिणी।
सर्वेषां कर्मकर्त्री च सर्वगुणविवर्जिता।।१६।।

मैं समस्त वेदों में और पुराणों में वाक्य स्वरूप से विद्यमान हूँ। मैं समस्त प्रकार के गुणों से रहित होकर हर समय समस्त कार्य करती हूँ।

अहं सिद्धिरहं शुद्धा विज्ञाना ज्ञानरूपिणी।
अहं भूतं भविष्यं च भक्तानां भक्तिदायिनी।।१७।।

मैं सिद्धा, पवित्रा, विज्ञाना तथा ज्ञानस्वरूपा हूँ। भक्तों को मैं भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान कालिक भक्ति प्रदान करने वाली हूँ।

अहं चेतनाशक्तिश्च अहं शोकविवर्जिता।
अहं मानापमाने च पूर्णा शून्यास्म्यहं शिवा।।१८।।

मैं सबकी चेतना शक्ति हूँ। मैं हर तरह से शोक तथा मानापमान से रहित हूँ। मैं शून्या, पूर्णा और मङ्गलमयी हूँ।

अद्वैतद्वैतहीनाऽहं सर्वचिन्ता-विनिर्गता।
लक्ष्यालक्ष्यविहीनास्मि जनसत्पथदर्शिनी।।१९।।

मैं अद्वैत तथा द्वैत से रहित हूँ और समस्त प्रकार की चिन्ता से दूर रहती हूँ। मेरा कुछ भी लक्ष्य अथवा अलक्ष्य नहीं रहता है। मैं सत्य पथ को दिखाने वाली हूँ।

अहमन्तर्गता चास्मि सत्यरूपेऽप्यवस्थिता।
अहं गुणिगणाध्यक्षा सर्वव्याप्ता हि शङ्कर!।।२०।।

मैं सबके अन्दर सत्य स्वरूप से रहती हूँ। गुणीजनों की मैं अध्यक्ष हूँ। हे शङ्कर! मैं हर जगह व्याप्त हूँ।

सर्ववेदान्तविद्येऽहं सर्वानन्दप्रदायिनी।
सर्वप्रपंचरहिता दिगम्बरी तथैव च।।२१।।

मैं समस्त वेदान्त को जानती हूँ तथा सबको आनन्द देती हूँ। मैं सब प्रकार के माया से रहित हूँ। साथ ही शून्य रूप वस्त्र को धारण करने के कारण दिगम्वरी हूँ।

विद्याहं च तथा वेदः शास्त्राहं चंचला तथा।
अहं मधुरशब्दा च मुनीनामुत्तमं तपः।।२२।।

मैं विद्या, मैं वेद, मैं शास्त्र, मैं चंचला, मैं मधुर शब्द तथा मैं ही मुनियों की श्रेष्ठ तपस्या हूँ।

अहं भक्तिरहं शक्तिरहङ्कारविवर्जिता।
अहं प्रसिद्धा सर्वत्र पूर्णाहं च प्रकीर्त्तिता।।२३।।

मैं भक्ति, मैं शक्ति, मैं अहङ्कारशून्या, प्रसिद्धा और सर्वत्र पूर्ण रूप से प्रकीर्त्तित हूँ।

भ्रष्टानां त्राणकर्त्री च कामिनां कामदा सदा।
सूक्ष्माणामतिसूक्ष्मा च बृहत्सु बृहती तथा।।२४।।

मैं पापियों की रक्षा-कारिणी तथा कामना चाहने वालों के लिए कामना का फल देन वाली हूँ। साथ ही मैं सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म तथा महत् से महत्तर हूँ।

एकाग्रमनसा त्वेव ये भजन्ति निरन्तरम्।
मोक्षं ददामि तेभ्योऽहं निश्चयं शृणु शङ्कर!।।२५।।

हे शङ्कर! जो मेरा भजन एकाग्र चित्त से करते हैं, उनको निश्चित ही मैं मोक्ष प्रदान करती हूँ।

भक्तानां शब्दरूपेण तिष्ठामि स्वरयन्त्रके।
कथयेऽहं भजस्वेमां नूनं प्राप्स्यसि सत्त्वरम्।।२६।।

मैं शब्द के स्वरूप से भक्तों की स्वरयन्त्रिका में रहती हूँ। मैं उनसे कहती हूँ कि मेरा भजन करो, निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त करोगे।

गमने पठने वापि शयने भोजने तथा।
श्मशाने चपले याने केवलं प्रार्थयस्व माम्।।२७।।

गमन के समय में, पठन के समय में, शयन अवस्था में, भोजन करते हुये, श्मशान में, यान में केवल मेरी ही प्रार्थना करनी चाहिए।

सूर्ये प्रखरतेजोऽहं चन्द्रे च शीतलं तथा।
सागरेषु च क्षीराब्धिः पर्वतेषु हिमालयः।।२८।।

मैं सूर्य का प्रखर तेज तथा चन्द्र में शीतलता हूँ। मैं सागरों में क्षीरसागर तथा पर्वतों में हिमालय हूँ।

एवं यो हि विजानाति मन्मन्त्रमपि केवलम्।
सर्वश्रेष्ठः स सर्वज्ञः ज्ञानी मानी धनी भवेत्।।२९।।

इस प्रकार से जो साधक केवल मुझे तथा मेरे मन्त्र को जानता है, वह सब जानने वाला, सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी, मानी तथा धनी होता है।

मृदङ्गक्वणनश्चाहं यन्त्रियन्त्रस्य झंकृता।
सङ्गीता सुषमा विद्धि गायकाङ्गविभूषिका।।३०।।

मैं मृदङ्ग का शब्द हूँ और मैं गायकों के यन्त्रों का झन् झन् झंकार शब्दकारिणी हूँ। मैं गायकों के अङ्गों को भूषित करके सुन्दर संगीत प्रकाशित करती हूँ।

मातरं कर्हिचित् काले स्तनन्धयः शिशुर्यथा।
न त्यजन्ति क्षणं तावत् भक्तैश्चाहं तथैव च।।३१।।

जिस प्रकार स्तनपान करने वाला शिशु अपनी माता को कभी भी छोड़ नहीं पाता है, ठीक उसी प्रकार मेरे भक्त मुझे नहीं छोड़ पाते हैं।

ऋषिश्रेष्ठाः सर्वदैव यदिच्छन्ति मनोगतम्।
अकस्मादेव तेभ्योऽहं ददाम्येव प्रयत्नतः।।३२।।

श्रेष्ठ ऋषिगण हर समय अपने मन से जिस विषय की अभिलाषा करते हैं, मैं प्रयत्नपूर्वक उनको प्रदान करती हूँ।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
ज्ञानयोगकथनं नाम षोडशोऽध्यायः

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(शान्तिक्रियामार्गकथनम्)

शिव उवाच

अद्वैतां ब्रह्मरूपां च ध्यायेऽहं त्वां निरन्तरम्।
भो मातस्त्वं मद्‌हृदये तिष्ठ बुद्धिप्रदायिनि।।१।।

द्वैतशून्या ब्रह्मरूपा बुद्धि को देने वाली माता! मैं सर्वदा आपका ही ध्यान करता हूँ। आप मेरे हृदय में वास करो।

जगत्पूज्यां बृहद्रूपां मस्तके किरिटीधृताम्।
व्योमकेशीं प्रसन्नां च स्वर्णालङ्कारशोभिताम्।।२।।
भावभक्तिलयैर्युक्तां सदा भक्तप्रियङ्करीम्।
त्वां पृच्छामि कथं ब्रूहि जायते भक्तिरुत्तमा।।३।।

जगत् में पूज्या, विराट् स्वरूप वाली, मस्तक में मुकुट धारण करने वाली, आकाश की भाँति नीलवर्णोपेत केश वाली, प्रसन्न रहने वाली, स्वर्णालङ्कार से शोभिता, भक्ति, भाव तथा लय से युक्ता भक्तों का कल्याण करने वाली आपसे मैं पूछ रहा हूँ कि किस प्रकार श्रेष्ठ भक्ति उत्पन्न होती है।

गायत्र्युवाच

शृणु शिव प्रवक्ष्यामि भक्तियोगरसामृतम्।
मन्त्रं यन्त्रं समानीय येन हृदि तु पूज्यते।।४।।
अहं तत्र न तिष्ठामि क्षणं यावद्धि शङ्कर!।
भक्तिहीनं कृतं कर्म नूनं गच्छति निष्फलम्।।५।।

गायत्री जी ने कहा– हे शिव! मैं भक्तियोगरसामृत को कह रही हूँ, आप सुनो। जो भक्ति तथा प्रेम के विना मन्त्र, यन्त्र आदि से हृदय में मेरी पूजा करता है, मैं वहाँ क्षणमात्र भी नहीं रहती हूँ। क्योंकि भक्ति के बिना कोई भी कर्म निश्चय ही निष्फल हो जाता है।

सर्वोत्तमद्विजश्रेष्ठाः मम साकारमूर्त्तिकम्।
पूजयन्ति प्रेमशक्त्या तेभ्यो शान्तिं ददाम्यहम्।।६।।

सर्वोत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण गण मेरे साकार स्वरूप की प्रेम भक्ति के साथ पूजा करते हैं। मैं उनको शान्ति प्रदान करती हूँ।

शीतोष्णादीन् परित्यज्य सर्वेन्द्रियाणि संयताः।
ये त्वेवं भजन्त्येते बुद्धिमन्तः प्रकीर्त्तिताः।।७।।

शीत, उष्ण आदि अनुभवों को छोड़कर इन्द्रियों का संयमन करते हुये जो मेरा भजन करते हैं, वे बुद्धिमान् कहे जाते हैं।

सुखदुःखे च विस्मृत्य समभावं समात्मकम्।
सर्वं मदर्पणं येषां ते मे प्रियाश्च सर्वदा।।८।।

जो सुख और दुःख को भूल कर सबके प्रति समभाव तथा समात्मक होकर मुझे सब समर्पण कर देते हैं, वे सर्वदा मेरे प्रिय होते हैं।

हिंसां तु वर्जयन् दूरमहङ्कारं तथा परम्।
सर्वदा तुष्टचित्ताः ये ते मे प्रियङ्कराः मताः।।६।।

जो हिंसा का वर्जन करके, अहङ्कार को दूर रखते हुये सर्वदा सन्तुष्ट रहते हैं, वे मेरे प्रिय होते हैं।

सर्वकर्मफलान्येव यः करोति मदर्पणम्।
सर्वदा मद्भक्तियुतो मयि स्थिरं भवेन्मनः।।१०।।

जो समस्त कर्मों के फल को मुझे समर्पण कर देता है तथा सर्वदा मेरी भक्ति के साथ रहता है, उसका मन मुझमें स्थिर रहता है।

यः करोति जपध्यानं यागपूजादिकं तथा।
भवार्णवाद्द्रुतं पारं नयामि शङ्कर! ध्रुवम्।।११।।

हे शङ्कर! जो जप, ध्यान, याग, पूजादि करता है, मैं उसे संसाररूप समुद्र से निश्चय ही पार कराती हूँ।

सकामभावमाश्रित्य ये गच्छन्ति ममान्तिकम्।
अहं तेभ्यो न दास्यामि दर्शनं च कदाचन।।१२।।

जो मन में कामना के साथ मेरे समीप आते हैं, उनको मैं कभी भी दर्शन नहीं देती हूँ।

तिष्ठामि हृदये तेषां ये जंपन्ति निरन्तरम्।
ते मोक्षफलभाजश्च सत्यं वदामि शङ्कर!।।१३।।

हे शङ्कर! मैं सत्य कह रही हूँ। जो सर्वदा मेरा जप करते हैं, मैं उनके हृदय में रहती हूँ; साथ ही वे ही मोक्षफल को प्राप्त करते हैं।

अष्टैश्वर्ययुतां ये मां चिन्तयन्ति च सर्वदा।
तमोगुणं परित्यज्य सूर्यलोकं प्रयान्ति ते।।१४।।

जो अणिमादि अष्टैश्वर्य से सम्पन्न होकर सर्वदा मेरा चिन्तन करते हैं, वे तमोगुण को छोड़कर सूर्यलोक को जाते हैं।

सुखदा दुःखतप्तानां सुखीनां सुखदायिनी।
ये त्यक्त्वा सर्वकार्याणि जपन्ति मत्प्रियाश्च ते।।१५।।

मैं दुःख से व्याकुलित जीवों के लिए सुख देने वाली एवं सुखी जीवों के लिए सुख देने वाली हूँ। जो समस्त कर्मों को छोड़कर मेरा जप करते हैं, वे ही मेरे प्रिय होते हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र आत्मनः स्तोत्रचक्षुषा।
स तु धीमान् मनुष्येषु मोक्षं प्राप्नोति तत्क्षणम्।।१६।।

अपने स्तोत्र चक्षु से जो मुझे हर समय देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान् होता है। साथ ही वह तत्क्षण ही मुक्ति प्राप्त करता है।

रागद्वेषौ परित्यज्य समबुद्ध्या च सर्वगान्।
एकैव मन्यते यस्तु मत्प्रियोऽसौ न संशयः।।१७।।

जो मनुष्य राग, द्वेष का परित्याग करते हुये सम बुद्धि से सबको एक स्वीकार करता है, वह मेरा प्रिय होता है, इसमें संशय नहीं है।

शिव उवाच

श्रुत्वेमां मधुरां वाचं त्वन्मुखाब्जात् विनिर्गताम्।
नमस्करोमि सानन्दं शतवारं सहस्रकम्।।१८।।

शिव जी ने कहा– मैं आपके मुखपद्म से निकले हुये इन वचनों को सुनकर आनन्द के साथ आपको शत बार सहस्र बार नमस्कार कर रहा हूँ।

गुणाधीनां गुणज्ञेयां सत्स्वरूपां सनातनीम्।
मातरं चाभिनन्दामि सदानन्दप्रदायिनीम्।।१९।।

समस्त गुणों के अधीना, गुणज्ञा, सत्य स्वरूप वाली, सनातनी, सर्वदा आनन्द प्रदान करने वाली माता आपका मैं अभिनन्दन करता हूँ।

आद्याशक्तिं वेदजातां वेदमातरमेव च।
पूजितां परमां देवीं त्वां नमामि हि भक्तिदे।।२०।।

हे भक्ति प्रदान करने वाली माता! आप आद्या शक्ति, वेद से उत्पन्न तथा वेदमाता हो। आप सबकी पूज्या श्रेष्ठ देवी हो। आपको हम नमस्कार कर रहे हैं।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः शान्तिक्रियामार्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः

अथाष्टादशोऽध्यायः

(ब्रह्मनिर्वाणयोगकथनम्)

गायत्र्युवाच

शृणु देव उमाकान्त! अपूर्वं गूढ़मेव हि।
ब्रह्मणः ब्रह्मकार्यं च यं कुर्वन्ति निरन्तरम्।।१।।
कार्यं त्रैगुण्यरूपाख्यं च त्रिसन्ध्याहवनार्च्चनम्।
ते नूनं ब्रह्मनिर्वाणं प्राप्नुवन्ति च सर्वदा।।२।।

हे देव उमाकान्त! इस अपूर्व अत्यन्त गोपनीय सत्त्व, रजस्, तमस् त्रिगुणविशिष्ट ब्रह्माजी के ब्रह्मसम्बन्धी कार्य को जो प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालीन होम-पूजा आदि को करते हैं, वे सदा ही ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करते हैं।

समभावं च ब्रह्मैक्यं यश्चिन्तयति निश्चलम्।
कर्मयोगी सदा पूज्यो एकनिष्ठः स उच्यते।।३।।

जो साधक मनुष्य समस्त विषयों में समभाव का तथा ब्रह्म के ही एकत्व का अविचलित चित्त से चिन्तन करता है, उसे कर्मयोगी, सदा पूज्य तथा एकनिष्ठ कहा जाता है।

सर्वदा निर्मलं चित्तं मयि संन्यस्य सर्वथा।
दृढ़भक्त्या सन्तरति भवसंसारसागरम्।।४।।

जो साधक मनुष्य दृढ़ भक्ति से सर्वदा निर्मल चित्त को मुझमें न्यस्त करता है, वह इस संसार सागर से पार हो जाता है।

सर्वकार्यं परित्यज्य मत्कर्माणि करोति यः।
स ब्रह्मनिलयं याति नास्ति सन्देहकारणम्।।५।।

जो साधक मनुष्य समस्त जागतिक कार्यों को छोड़कर मेरे कार्यों का निष्पादन करता है, वह 'ब्रह्म' पद को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है।

निर्भर्त्सितं निरालम्बं निरीहं क्रोधवर्जितम्।
वीर्यवन्तं सत्यवन्तं सत्यज्ञानं प्रदीयते।।६।।

जो किसी भी प्रकार का निन्दनीय कार्य नहीं करता है, जो उदासीन, क्रोधशून्य, वीर्यवान् तथा जिसकी आत्मा सत्पथ में रहती है, उसको मैं सत्यज्ञान प्रदान करती हूँ।

जीवानां सर्वकार्याणि संसाधयति नित्यशः।
तानि संत्यज्य मत्कर्म यः करोति स पण्डितः।।७।।

प्रतिदिन प्राणीगण अपने समस्त कार्यों का निष्पादन करते हैं। जो उन समस्त कार्यों को छोड़ते हुये मेरा कार्य करता है, वही पण्डित होता है।

मद्भक्तः मद्गतप्राणः यो जनश्चिन्तयेद् यदि।
अभयं मत्पदद्वन्द्वं लभते नात्र संशयः।।८।।

जो भक्तजन मुझमें प्राणों का लय करके मेरा चिन्तन करते हैं, वे नित्य, शाश्वत अभय पद को प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिव्रतः।
कायेन मनसा वाचा चिन्तयेद्वा निरन्तरम्।।६।।
स सर्वसिद्धिमाप्नोति अष्टैश्वर्यं तथैव च।
अन्तकाले मत्सान्निध्यं समागच्छति सर्वथा।।१०।।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी कोई भी क्यों न हो, यदि वह काय, मन, वाक् से निरन्तर मेरा चिन्तन करता है, तो वह समस्त प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करता है। साथ ही अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है तथा मृत्यु के पश्चात् सर्वथा मेरे पास आता है।

शिव उवाच

माननीयां प्रेमरूपां मातृकां चाखिलेश्वरीम्।
मायां त्रिगुणशून्यां च पुण्यां मन्दाकिनीप्रभाम्।।११।।
देवदेवीभिराराध्यां शक्तिस्त्वामविनाशिनीम्।
रूपातीतां ज्ञानवतीं नौमि देवीं सनातनीम्।।१२।।

शिव जी ने कहा- माननीया, प्रेमस्वरूपा, समग्र संसार की ईश्वरी, माया, त्रिगुणस्वरूपा, पुण्यसलिला गंगा की प्रभा से युक्ता, देवी-देवताओं से पूज्या, रूपातीता, अविनाशिनी, ज्ञानशालिनी, सनातनी, मातृस्वरूपा गायत्री देवी को नमस्कार करता हूँ।

तारिणीं पतितानां च विशालवपुधारिणीम्।
सकामानामनाकामानामभयां वरदायिनीम्।।१३।।

पतित जनों का उद्धार करने वाली, विराट शरीर को धारण करने वाली, सकाम और निष्काम लोगों के लिए अभय वर प्रदानकारिणी माता गायत्री देवी को नमस्कार कर रहा हूँ।

सर्वसौख्यप्रदे देवि सर्वमङ्गलकारिणी।
सर्वार्थसाधिके त्वं हि त्वत्पदाब्जे नमाम्यहम्।।१४।।

हे देवि! आप समस्त सुख को देने वाली, सबका मङ्गल करने वाली तथा सबके अभीष्ट की सिद्धि कराने वाली हो। अतः आपके चरणकमलों में मैं नमस्कार करता हूँ।

सर्वस्वरूपा त्वं देवि सर्वशक्तिसमन्विता।
योगनिष्ठा योगाभीष्टा योगज्ञानविशारदा।।१५।।

हे देवि! आप सर्वस्वरूपा, समस्त शक्तियों से युक्ता, योगाभीष्टा तथा योगज्ञान में प्रवीणा हो।

वायुर्यमोऽग्निर्व्योमश्च स्तुतिं चक्रुर्मुहुर्मुहुः।
तां देवीमखिलेश्वरीं कलिकलुषहारिणीम्।।१६।।

समस्त प्रपंच की स्वामिनी, कलि के पाप को हरने वाली उस देवी की वायु, यम, अग्नि और आकाश ने बार-बार स्तुति की।

सृष्टिस्थितिकरां देवीं परमां शाश्वतीं सदा।
सांख्ययोगस्थिरां दिव्यां ब्रह्मनिर्वाणकारिणीम्।।१७।।
पापतापतमोहन्त्रीं ज्ञानालोकप्रदायिनीम्।
भजन्ति योगिनः सर्वे गायत्रीश्रुतिमातृकाम्।।१८।।

सृष्टि और पालन करने वाली, परमा, सदा विद्यमाना, सांख्य योग में स्थिरा, ब्रह्मनिर्वाणकारिणी, पाप के दुःखान्धकार का नाश

करने वाली, ज्ञान के प्रकाश को प्रदान करने वाली उस वेदमाता गायत्री को योगीजन सदा भजते हैं।

शक्तिदं तावकं स्तोत्रं यो नरः सर्वदा पठेत्।
विघ्नास्तस्य न वर्त्तन्ते यावत् सूर्यनिशाकरौ।।१९।।

जो साधक मनुष्य सदा आपके इस शक्तिप्रद स्तोत्र का पाठ करता है, सूर्य तथा चन्द्र जबतक हैं तबतक उसके पास विघ्न नहीं आते हैं।

अशेषगुणसंयुक्तां नानारूपां महेश्वरीम्।
त्वां नमामि गुणातीतां ज्ञानकोषप्रकाशिनीम्।।२०।।

हे देवि! आप अनेक प्रकार के गुणों से अन्वित हो। आपका अनेक रूप है। आप गुणातीता, ज्ञानग्रन्थि को प्रकाशित करने वाली हो। अतः हे महेश्वरि! मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ।

ऋतेऽपि त्वां न स्थैर्यं स्यात् भूतलस्य।
मातस्तस्मात् भजेऽहं त्वां नामोच्चारणपूर्वकम्।।२१।।
परां भक्तिं परां शक्तिं परां गायत्रिमातरम्।
ये भजन्ति नमन्ते त्वां लभन्ते दर्शनं तव।।२२।।

हे देवि! आपके बिना यह संसार कदापि नहीं रह सकता। हे माता! मैं आपका नाम भजता हूँ। अतः जो उस परा भक्ति, शक्ति-स्वरूपा गायत्री माता का भजन करते हैं तथा प्रणाम करते हैं, वे उसका दर्शन प्राप्त करते हैं।

ॐ श्रीमत्स्वाम्यरूपानन्ददासविरचितायाः ब्रह्मगायत्र्याः
ब्रह्मनिर्वाणयोगकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः

अथ ब्रह्मगायत्र्याः माहात्म्यम्

मार्कण्डेय उवाच

भो नाथ! ब्रूयतां तावत् गायत्र्याः महिमानकम्।
यः पठेद्वा स्मरेन्नित्यं सोऽपि प्राप्नोति किं फलम्।।१।।

मार्कण्डेय जी ने कहा- हे नाथ! जो प्रतिदिन गायत्री की महिमा को पढ़ता या स्मरण करता है, वह फल को प्राप्त करता है उसे कहिए।

शिव उवाच

मार्कण्डेय! शृणु त्वं हि गूढ़ं माहात्म्यमव्ययम्।
यत्स्वयं वेदमातुश्च मुखाम्भोजात् विनिःसृतम्।।२।।

शिव जी ने कहा- हे मार्कण्डेय! तुम उसके गूढ़ अविनाशी माहात्म्य को सुनो। जो स्वयं वेदमाता के मुखारविन्द से निकला है।

गायत्रीपठनं कृत्वा माहात्म्यमपि यः पठेत्।
स नूनं मोक्षमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः।।३।।

जो गायत्री का अध्ययन करके उसके माहात्म्य को भी पढ़ता है, वह निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करता है; यह सत्य है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

एकपादं द्विपादं वा त्रिपादं वा चतुष्टयम्।
सभक्तिकं यः स्मरति स महात्मा न संशयः।।४।।

जो पुरुष एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद और चतुष्पाद गायत्री का भक्तिपूर्वक स्मरण करता है, वह महात्मा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अष्टादशस्वध्यायेषु गायत्रीमहिमानकम्।
मनसा चिन्तयेद् यस्तु स भवेन्मोक्षभाजनम्।।५।।

जो अट्ठारह अध्याययुक्त गायत्री-महिमा का मन से चिन्तन करता है, वह अवश्य ही मोक्ष का अधिकारी होता है।

देवीदेवगणाश्चैव परित्यज्य स्वमन्दिरम्।
तत्राऽगच्छन्ति सहसा यत्रैषा परिपठ्यते।।६।।

देवी और देवगण भी अपने मन्दिर को छोड़कर एकाएक वहाँ आ जाते हैं, जहाँ इस गायत्री का पाठ किया जाता है।

सकृत् क्रुद्धा यदा देवी क्षुद्रकारणलक्षिता।
तदा पाठेन गायष्याः शान्तिमाप्नोति तत्क्षणात्।।७।।

जब देवी किसी क्षुद्र कारण से एक बार क्रुद्ध हो जाती है, तब गायत्री के पाठ से उसी क्षण शान्ति प्राप्त होती है।

स्नानादिकं विधानेन पवित्रतमचेतसा।
एकासने स्थितो भूत्वा न्यासादीन् क्रियते सदा।।८।।

स्नान आदि विधान से पवित्र मन के द्वारा एक आसन में बैठकर ही सदैव न्यासादि क्रियायें की जाती हैं।

अन्यत् किंचिन्न संचिन्त्य तस्याश्चिन्तनकेवलम्।
सम्यक्पाठविधानेन नूनं मोक्षमवाप्नुयात्।।९।।

जो पुरुष अन्य किसी का चिन्तन न करके केवल उसी गायत्री का चिन्तन और अध्ययन करता है, वह निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

शयने गमने वाऽपि मन्दिरे सर्वसन्निधौ।
गायत्रीं पठते यो वै स तीर्थफलभाग्भवेत्।।१०।।

जो सोते समय, जाते समय या मन्दिर में सभी प्रकार से उस गायत्री का पाठ करता है, वह तीर्थों के फल को प्राप्त करता है।

आदौ तु कीलकं कृत्वा कवचमर्गलं ततः।
सम्पुटितां च गायत्रीं जुहोति द्विजपुङ्गवः।।११।।

जो पहले कीलक, कवच और अर्गल स्तोत्र का पाठ करके द्विजश्रेष्ठ सम्पुटित गायत्री का हवन करता है।

समिधा चरुणा वाऽपि तथा वैदिकचर्यया।
ब्रह्मलोकं च सम्प्राप्य न प्राप्नोत्यधदुःखदम्।।१२।।

समिधायुक्त हविष्य के द्वारा वैदिक विधि से यज्ञ कर्म करके मनुष्य अधोगति को प्राप्त नहीं होता है।

गायत्रीमन्यदेवेभ्यो हीनं मत्वा न संस्मरेत्।
सोऽपि नराधमः सत्यं दृढ़वाक्यं हि मामकम्।।१३।।

जो गायत्री को अन्य देवताओं से हीन मानकर स्मरण नहीं करता है, वह मनुष्यों में अधम है, यही मेरा सत्य दृढ़ वाक्य है।

गायत्रीपुस्तकं यस्तु दिवसेन सकृत् नरः।
न पश्यति तथा तस्य पशुवत् जीवनं भवेत्।।१४।।

जो मनुष्य दिन में एक बार भी गायत्री के पुस्तक को नहीं देखता है, उसका जीवन पशु के समान होता है।

इति श्रीब्रह्मगायत्र्याः माहात्म्यम्

अष्टाशीत्यधिकोनविंशतिशतके मेषमासस्य पंचमे दिवसे।
एप्रीलमासस्य पंचविंशतितारिकायां माधवे मासि शुक्लपक्षे।।
सीतानवम्यां तिथौ चन्द्रवासरे पंचसखाश्रमे ओस्तपुरे।
ब्रह्मगायत्र्याः पुनः लिखनं समाप्तमितः प्राक्।।
सप्ताशीत्यधिकोनविंशतिशतके बृषमासस्य त्रयोदश।
दिवसे वनविहारी आश्रमे खण्डतर्या स्वामिना अरूपानन्ददासेन।।
आरब्धोऽयं ग्रन्थः ततः परं तेनैव अष्टाशीत्यधिकोनविंश।
शतके धनुमासस्यार्कवासरे पाराद्वीपस्थाने समाप्तिकृतः।।

हरिः ॐ हरिः

श्लोकानुक्रमणी

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
अ	
अकारं च उकारं च	१६/१२
अकारो वदने नित्यमुकारो	४/४४
आकाशवायुरूपाहं आपो	११/२५
अखण्डानन्दरूपा च	१६/१४
अगतीनां गतिर्नाथ	४/७०
अग्निं समालोक्य यथा	१०/१२
अग्निर्यथा पदार्थानि	५/१२
अग्न्युत्ताप समं चाहं	२/४६
अग्निं दृष्ट्वा याज्ञिकाः	४/६५
अर्थं यशो प्रभावश्च	३/२८
अंकुरारोपणं कर्म	४/५
अतो निष्पापहृदयं	१५/१६
अत्र पश्यामि गोविन्दं	४/४६
अन्नमयं शक्तिमयं	१३/२३
अद्वैतद्वैतहीनाऽहं	१६/१६
अद्वैतां ब्रह्मरूपां च	१७/१
अन्यान् देवगणान्	४/१६
अनिन्द्यापरिमेया हि	६/८
अपश्यन्नायिकामेकां	१/१०
अपूर्वं ते इदं रूपं	१२/३०
अभेद्यं च अच्छेद्यं च	१५/६
अर्धमात्रां शून्यरूपां	६/१८
अविद्या सवितुर्वर्णा	१५/३
अशेषगुणसंयुक्तां	१८/२०
अष्टसिद्धिं लभन्ते च	६/३८
अष्टांगयोगांगलयांगसूत्रैः	१०/१६
अष्टांगयोगसिद्ध्यर्थं	२/१४
अष्टावक्रादयश्चैव	४/५१
अष्टैश्वर्ययुतां ये	१७/१४
असत्संगं वर्जयित्वा	१५/१०
अस्माकं यज्ञशालां च	४/२६
अस्त्विति मुग्धवचनं	५/५७
अहमन्तर्गता चास्मि	१६/२०
अहं कुण्डलिनी चैव	१३/२८
अहं चेतनाशक्तिश्च	१६/१८
अहं ज्ञानप्रदा ब्राह्मी	१६/१०
अहं तत्र न तिष्ठामि	१७/५
अहं ब्रह्मास्मि सत्यं तु	१४/३१
अहं भक्तिरहं शक्तिः	१६/२३
अहं स्मृतिरहं मेधा	१२/२२
अहं सिद्धिरहं शुद्धा	१६/१७
अहौ वा पुष्पमालायां	११/३५
आ	
आकाशमण्डलस्था च	८/२४
आकाशस्तु यथासर्वम्	५/११
आचार्या गायत्रीं देवीं	४/२८
आचारहीनो घृण्यश्च	१५/१८
आत्मज्ञानी च	५/३४
आत्मदर्शी भवेन्नित्यं	६/५
आत्मनो देहप्राणांश्च	१४/१६
आत्मसिद्धिं च प्राप्नोति	६/८
आत्मा नित्यः जगत्	१४/१६
आत्मानुशीलनं कृत्वा यो	१२/१८
आत्मानं च परित्यज्य	८/२१
आत्मानं मन्यते न्यूनं	१३/११
आदाविमं वरं तावत्	२/२६
आदित्यतेजो विधृतां	४/८०

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
आद्याशक्तिप्रसादेन	६/३६
आद्याशक्तिमनिन्द्यां च	७/५३
आद्याशक्तिं वेदजातां	१७/२०
आद्याशक्ति महामाये	५/७
आपो ज्योतिः रसोऽमृतं	४/३६
इ ई	
इन्द्रादिदेवताः सर्वे	५/५०
इमां वार्णीं कथयित्वा	१/२२
इमां शक्तिं विना तावत्	१५/२३
इष्टशक्तिप्रभावेण सर्वे	३/२२
उ ऊ	
उचितानुचितं किंचित्	१५/८
उत्तरेऽथर्वकुण्डं च	४/७
उत्पादकबलेनैव	३/१६
उदरे महदाकाशः	२/१०
उपस्थिता स्वयं देवी	५/५३
ऋ	
ऋतेऽपि त्वां न स्थैर्यं	१८/२१
ऋषयः गूढ़तत्त्वेमं यत्	१४/३
ऋषयो मुनयो विप्रास्तिस्रो	१६/६
ऋषयः शृणुत तावत्	६/२
ऋषिछन्दादिकं कृत्वा	४/७५
ऋषिश्रेष्ठाः सर्वदैव	१६/३२
ए ऐ	
एकदा तौ च ब्रह्मर्षी	५/४७
एकदा परमो विष्णुः	१२/३
एकदा भगवान् विष्णुः	५/५
एकदा मुनयः सर्वे	८/१
एकदा मुनिभिः सर्वैः	३/५
एकदा विश्वनाथाय	८/३
एकदा सृष्टिकर्त्ता तु	४/४
एकाग्र मनसा त्वैव	१६/२५
एवं यो हि विजानाति	१६/२८
एवंविधिं समाश्रित्य	१४/१२
एषा स्वयं मूलाधारात्	१३/४
ऐशान्ये सूर्यमण्डलं	४/१२
ओ औ	
ऊँकार प्रथमं मन्त्रं	१२/७
ऊँकारौजस्विनि मातः	७/७
ऊँभूर्भुवःस्वःमहःसत्यं	४/७६
ऊँभूर्भुर्वः स्वः महः	२/३४
क	
कोऽहमित्यनभिज्ञो यः	१२/१४
कथय योगमार्गं तु	१४/२
कथं शशाप तां	४/२
कथं वा पूज्यसे लोके	१२/४
कथ्यतां महतां श्रेष्ठ	१२/२
कम्बुपाणे ! तावदहं	४/६०
कलुषं याति दूरं च	६/४
कल्पनावादिनो लोकाः	१४/३२
कृषकः स्वहलेनैव	६/२३
कामधेनुं समानीय	४/३१
कान्ता नास्ति ममात्रैव	४/२५
कार्यं त्रैगुण्यरूपाख्यं	१८/२
कार्यकारणभावेन	५/२०
कालशक्तिर्ममतावत्	३/२३
किं तावत् मन्त्रमानीय	७/३
किन्त्वहं तेन साकं च	४/६२
किन्तु महत् कार्यमेकं	४/५३
कुण्डलिनीं परां शक्तिं	१३/२०
कृपया वरदे देवि	११/६
कोटिसूर्यसमं तेजः	१/५
क्रीडामात्रं विश्वमाया	१४/२६
क्रोधाग्निना दिशः	४/६४

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
ख	
खड्गरूपेण शस्त्रेण	६/५
ग	
गर्गपराशरश्चैव	६/६
गच्छामि यावत्तव	१०/४
गतिमुक्तिप्रदात्र्यहं	११/३२
गते कियति दिवसे	१९/४
गन्धर्वाः शंखनादांश्च	४/२३
गमने पठने वापि	१६/२७
गायत्र्येव ज्ञानगंगा	१६/३
गायत्र्याः शान्तिवचनं	४/६३
गार्हस्थ्यधर्मनिखिलं	५/३०
गुणाधीनां गुणज्ञेयां	१७/१६
गुरुविप्रपण्डिताश्च	१२/२३
गृहधर्मं समाश्रित्य	१४/३८
गोरूपेण पृथिव्यां	७/२६
घ	
घनान्धघोरसंसारादुद्धारयति	६/७
घृतकुम्भं सहस्रं च	४/१६
ङ च	
चक्रं सुप्तां कुण्डलिनीं	६/२७
चंचलाक्षि ! नमामि त्वां	६/६
चतुर्विंशाक्षरं मन्त्रं	१५/५
चतुःषष्ट्यक्षरे देवि	७/७२
चतुःषष्ठीकलाधात्री	५/२
चतुःषष्ठी कलायुक्तं	४/३४
चतुष्पदे सिद्धिरस्तु द्वौ	४/३५
चन्द्रस्य कान्तिमभिनि	४/४६
चन्द्रस्य किरणो यद्वत	८/१६
चित्तं संयम्य ये	८/१२
चिदानन्दाभिदात्री त्वं	१/१६
चिन्तनात्तस्य देवस्य	१/८
चिन्तयित्वा विधिमिमं	११/१७
चम्पापुष्पसमादेवि !	११/३६
चौरघ्नी चपलांगी च	७/४१
छ	
छद्मांगीं छत्रपतयः	६/१०
ज	
जगत्पतिं वीक्ष्य	१०/७
जगत्पूज्यां वृहत्रूपां	१७/२
जगत्प्रपूज्ये सुरलोकवन्द्ये	५/५४
जगत्सु सर्वद्रष्ट्र्यहम्	१६/१३
जगत्सु ये मोहमायां	७/४८
जगद्धात्री समुत्पन्ना	८/६
जगद्धात्र्यै ज्वालामुख्यै	७/१४
जड़चेतनयोर्मध्ये	६/३
जनमंगलकार्यं तु	१५/२७
जनानां दुःखक्लेशं	६/२२
जपाकुसुमैः परिशोभिता	४/४५
जपापुष्पसमा देवि !	२/३०
जलं पीत्वा जीवगणाः	६/११
जलवाष्पं समुद्भूय	५/१०
जलस्थलवर्तीं देवीम्	८/२२
जलस्रोतधरा चास्मि	५/६
जले तिष्ठति गायत्री	८/२३
जाग्रत्याः कुण्डलिन्याश्च	१३/६
जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तिश्च	८/१७
जितेन्द्रियो योगिश्रेष्ठः	१४/६
जीवश्च निर्जीवश्चाहं	१६/१५
जीवात्मा परमात्माऽहं	११/२६
जीवानां च मनोभावं	६/१३
जीवानां सर्वकार्याणि	१८/७
जीवेषु पंचवक्त्राणि	१२/१६
ज्ञानज्ञ भो ऋषिश्रेष्ठ	१४/१

श्लोक.	अ./श्लो.सं.	श्लोक.	अ./श्लो.सं.
ज्ञानजाग्रतभावं च	६/२०	तत्सवितुर्वरेणीयं त्रिमुखं	१२/६
ज्ञानप्रेमश्च तन्त्राणां	१६/१	तत्क्षणादेव गायत्री	१२/२६
ज्ञानरूपा तु सा देवी	३/४	तथास्त्विति प्रतिज्ञाप्य	२/५०
ज्ञानसिद्ध्या तीक्ष्णबुद्धिः	६/१२	तथैव मम नाम्नि च	५/१६
ज्ञानामृतं च यो पीत्वा	११/१२	तथैव मम रूपं तु न	५/२६
ज्योतिरूपेण सुव्यक्तां	७/५५	तदा ते परमात्मानः	१४/२८
झ		तद्भाविता सदा देवि	७/२०
झंझवातैः नराः भिताः	६/१२	तद्वत् सा वेदमाता च	८/२०
ट		तनुक्षेत्रं परिमृज्य तथा	६/२४
टमकडिण्डिमाः वाद्याः	६/१४	तपःशक्त्या नम्रभावं	३/११
ठ		तमोगुणत्वमाधाय	१३/६
ठूलशून्यस्वरूपा त्वं	६/१५	तमःसत्त्वरजोहन्त्री	७/१६
ड		तव नाम पिपासितुं	२/२३
डुण्डुभो विषशून्योऽपि	६/१६	तव स्तुत्या प्रसन्नाहं	२/३७
ढ		तस्मान्मायामयं विश्वं	१४/२४
ढौकनं तु समानीय	६/१७	तस्य चालौकिकीं शक्तिं	६/३०
ण		तस्य साधु ब्रह्मगायत्रीं	६/२५
णीयं तव मुखे देवि	४/३६	तस्याः शापे गते देव्याः	४/७८
त		तां प्रकृतिं मरुद्व्योमः	२/३
तड़िदिव चंचला त्वं	७/४४	तां विलोक्य मुदं प्रापुः	४/८२
ततो ज्ञानविहीनास्तु	१४/१८	तारिर्णीं पतितानां च	१८/१३
ततस्ते योगतपसो न	१४/३३	तिष्ठामि शक्तिरूपेण	४/६१
ततः परं पद्मयोनिरभिशाप।	४/६६	तिष्ठामि हृदये तेषां ये	१७/१३
ततो यज्ञविधानं च	४/८६	तिसृक्षु सन्त्यवस्थासु	७/५६
ततः सर्वं यज्ञकर्म	४/५६	तुल्यातुल्यराहित्ये तुष्टा	७/२३
तत्त्वरूपा तु या देवी	५/४६	तृतीयं द्व्युलं चैव	४/१०
तत् पदात् शिक्षते योगी	१५/१२	तृणेषु काष्ठद्रव्येषु	७/२
तत्र त्वं पूज्यसे लोकैर्यत्र	७/६०	ते कदा मां न जानन्ति	१४/३४
तत्र सुष्ठु कटिस्थाने	२/६	तेजोशक्तिप्रभावेण	३/६
तत्त्वगुणैर्निमग्नस्तु	४/२६	त्रिकालज्ञाः भवन्त्येते	५/१४
तत्त्वज्ञैस्तत्वज्ञानार्थं	१३/१०	त्रिपुराणां च वृत्तान्तं	१६/२
तत्त्वरूपा तात्त्विकानां	६/१६	त्रिसन्ध्यायां जपन्तीह	१४/१४

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
त्रिसन्ध्यायां त्रिरूपं च	१४/३५
त्रैलोक्ये मन्त्ररूपा या	४/४०
त्वं किलैकाक्षरी रूपा	४/७७
त्वं पूज्यसे सर्वगृहांगणेषु	१०/११
त्वं वेदमाता जगति	२/२०
त्वन्नाम जगति श्रेष्टं	१२/३१
त्वां तत्प्रज्ञापरां देवीं	१४/४०
त्यक्त्वा सर्वस्थलं	७/१६
थ	
थुत्कारं शत्रुणां शब्दं	६/२०
द	
दत्वा वर द्वयं देवी	२/२६
दन्तजिह्वां च संस्पृश्य	६/२१
दक्षा सर्वेपु कार्येपु	७/४२
दक्षकन्या दूरद्रष्ट्री	७/५२
दारिद्र्यदु:खभीतिं च	६/२१
दिव्यशक्तिप्रभावेण जनाः	३/१६
दीर्घसूत्री मन्दबुद्धिः जनाः	५/४३
दीर्घायुश्च भवेत्तस्य	६/३३
दु:खशोकात् परे स्थित्वा	११/६
दुष्टसंहरणार्थाय त्यक्त्वा	२/४६
दृष्ट्वा तु गायत्रीं देवीं	२/३५
दृष्ट्वेदं तादृशं रूपं	१२/२७
देवतानां मातृरूपा योगिना	५/२५
देवदेवीभिराराध्यां शक्तिः	१८/१२
देवर्षे ! कथयस्तावत्	४/१
देवर्षे ! कृपया ब्रूहि	३/१
देवस्येति पदं तावत्	१५/२०
देवानां च मतं नीत्वा	४/८५
देव्यां पितामहे चान्याः	४/८८
देशे सर्वत्र विभाति	७/३०
देशान्तरेपु भुवनत्रयेपु	१०/१४

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
देवीशक्तिसमानीय	५/३७
द्विजाः मन्मन्त्रमानीय	५/३८
द्वे शक्ती केन रूपेण	८/८
ध	
धनाधिपं कुवेरं च	४/५०
धनाधिपो यक्षराजः	४/१८
धन्यां च धनदां धीरां	६/२२
धियो गुह्यस्थले पूते	४/३७
धियो धैर्यं रक्षणाय	१५/२४
धियो यो नः प्रचोदयात्	१२/११
धीमहि धारयेत् हृदि	१५/२२
धीरा बुद्धिप्रदात्री च	७/३६
धीशक्तिर्बुद्धिदानेन	७/३३
धीशक्तिर्विहीना लोकाः	१३/१६
धृतिशक्तिवलेनाहं	३/१४
धान्यानि शस्यक्षेत्राणि	२/१३
ध्यानमार्गेण सा देवी	११/४
न	
नक्तं सायं प्रातरेव त्वां	७/३६
न तत्र विद्यते भेदः न	१४/१७
नदीपु जह्नुकन्याऽहं	११/३०
नद्यास्तटे वा गिरिकन्दरे	१०/६
नभस्थाः देवताः सर्वे	४/१४
नम्रभावं समाधायाब्रवीत्	४/७६
नरकार्णवतारिण्यै	७/१५
नक्षत्राणि ग्रहाः सर्वे	१३/१६
नागयक्षरक्षगणाः	६/२३
नानाविधाः शक्तयश्च	३/६
नादं तु प्रथमं तत्र	८/४
निःस्वाः बहुधनं प्राप्य	६/१३
निदाघग्रीष्मे शरदि वसन्ते	१०/५
नियन्म्य पंचतत्त्वं च	६/६

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
निर्भर्त्सितं निरालम्बं	१८/६
निर्वलानां वली भूत्वा	१५/२१
निर्लोभी निर्विकल्पा च	७/२६
निवसन्ति पितृगणाः	२/७
निवेदयामो वै देवि	५/५६
निशम्य ब्रह्मज्ञानं तु	११/१८
निष्ठाशक्त्या तथा	३/८
नौमि त्वच्चरणं	११/२०
न्यासादिषट्कर्माणि च	४/४१
प	
पंचतत्त्वात्मकेनैव	१३/२५
पंचप्राणान् वशीकृत्य	६/३५
पंचभूतपरिव्याप्तं दृश्य	१३/२१
पंचभूतान् तु संयम्य	१३/८
पंचभूतानि संयम्य यो	६/२६
पंचमुखं दशवाहुं दर्शय	१२/२५
पंचवक्त्रे दशभुजे	२/३१
पंचाननेन त्रिबीज	२/४४
पंचेन्द्रियं पंचवह्नि	१२/२०
पंचेन्द्रियप्रभावेण यो	५/२२
पत्नीरूपं समाधाय	४/८१
पद्मासनेऽप्यवस्थाय	१४/१०
पप्रच्छ एकदा ब्रह्मा	७/५
पयोऽमृतसमं ते च	४/३३
परमात्मात्मनोर्योगं	१४/५
पराबीजं शक्तिबीजं	७/५४
परंब्रह्मणि शक्तिश्च	७/१७
परां भक्तिं परां शक्तिं	१८/२२
पर्वताः मेघचत्वारः	१२/२६
परोक्षे नारीरूपेण	४/६०
पवित्रां परमेशानीं	७/४५
पापतापतमोहन्त्रीं	१८/१८

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
पित्रोः सेवापरा ये	८/१६
पीतवस्त्रधरां देवीं	६/२४
पुण्यात्मने पुण्यफलं प्रदातु	१०/६
पुस्तकं चाक्षमालां च	३/३५
पूर्वकाले महादेव सन्ति	१४/४
पूर्वाह्ने गायत्रीरूपा	२/३६
पीनस्तनीं सुवदनाम्	१/११
प्रकृतिः पुरुषश्चैव नास्ति	१/३
प्रचोदयात् मन्त्रमिदं	१५/२८
प्रणवो यत्र गायत्री	८/६
प्रदोषकाले मुनिपुंगवाश्च	१०/८
प्रवालमालिका युक्ता	७/४०
प्रसन्ना यदि मे मात	२/३८
प्रसन्नाहं पद्मयोने ! तव	२/१६
प्राक्प्रणवं समानीय	१५/२
प्रातः पादं च विज्ञेयं	६/१८
प्राणवतां हि प्राणीनां	१३/१३
प्राणशक्तिः प्राणदात्री	१३/१७
प्राणशक्त्युद्भवं दीर्घं	३/१३
प्राणान् भूः कथ्यते नित्यं	१५/७
प्राणायाममासनं च	१४/६
प्राणायामं प्रथमं च	६/४
प्राणीनां जीवशक्तिश्च	१३/३
प्राणिनां पंचभूतोऽहं	१२/१७
पृच्छन्ति यद् भवन्तो	५/३
प्रेमशक्तिप्रभावेण	३/२५
प्रेमस्वरूपां च पवित्ररूपां	१२/२४
फ	
फलं ददाति वै नित्यं	६/२५
ब	
वन्धूकपुष्पवर्णायै	७/१०
वलवीर्येण ब्रह्मास्मि	११/२१

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
वात्यशक्तिं विना यश्च	८/१८
व्रजांगनाभिपूज्यायै	७/६१
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा	१८/६
ब्रह्मदर्शनमालम्ब्य	११/१४
ब्रह्माण्डे मन्दिरे भव्ये	७/३१
ब्रह्माविष्णुसुरगणाः	१/६
ब्रह्मादिभिः सुरगणैस्तां	१/१३
ब्रह्मासृष्टां धरित्रीं च	३/२६
वात्यसत्तास्वरूपेण	५/२८
भ	
भक्तानां भोजनार्थाय	४/२०
भक्तानां शब्दरूपेण	१६/२६
भग्नी जाया जननी च	११/२३
भण्डगणास्तु द्रुह्यन्ति	७/२८
भर्गो देवस्य धीमहि	१२/१०
भर्गो द्विवर्णमात्रार्थं	१५/१७
भवती वदति नित्यं	५/८
भवाब्धिपारतरण्यां	४/७१
भावभक्तिलयैर्युक्तां सदा	१७/३
भिक्षावृत्तिं समालम्ब्य	६/२७
भुवनजनपूज्या त्वं	७/६
भुवि कर्म तत् परत्वं	१५/६
भूतप्रेतपिशाचाश्च	७/६३
भूतशुद्ध्यादिकीं शुद्धिं	४/३०
भूरूपिण्यै भ्रान्तिहन्त्र्यै	७/८
भूर्लोकस्य कामधेनुः	१३/३०
भूलोकस्वर्गलोकैस्तु	६/११
भूलोके स्वर्गलोके तु	१/१७
भूर्भुवःस्वःमहः सत्यं	४/३८
भूयो भूयो नमामि त्वां	७/६४
भो देव ! त्वं ब्रूहि	१/१
भो देवाः ! कथयन्तु	१/१४
भो देवाः ! कथयन्तु	४/४८
भो देवि ! कथ्यतां	१३/१
भो ब्रह्मन् ! शृणु गायत्र्याः	७/६
भो ब्रह्मस्त्वं समागच्छ का	४/२४
भो मातः अभये देवि	१५/४
भो मातस्त्वं जगन्माता	४/३२
भो मातस्तव पादौ च	२/६
भो मातः ! वैष्णवि शक्ते	१६/५
भो मुने ! कथयत्वस्मान्	५/१
भो मुने ! कथ्यतामस्मान्	१०/१
भो मुने ! त्वं त्रिकालज्ञ	११/२
भो मुने ! ब्रह्मविदौ वा	५/५१
भो मुने ! योगतत्त्वं	१२/१
भो शक्ते कमलासने	११/५
भो सुसौम्या मुनिश्रेष्ठाः	४/३
भ्रष्टानां त्राणकर्त्री च	१६/२४
म	
मण्डलस्थान् सुरगणान्	२/५
मर्त्यलोके तु यः शैलः	१/२०
मद्भक्तः मद्गतप्राणः यो	१८/८
मद्भिन्नवस्तुनः कस्य न	१४/२२
मध्ये शिशुवेदकुण्डं	४/६
मधुपानमत्ता भृंगां	२/२२
मधुरं सरलं नित्यम्	५/४२
मनोवाक् पादपाणी च	५/२६
मनः प्राणैकस्थानं च	१४/७
मन्त्रमयी महारूपा	७/१२
मन्त्रं देवार्चनं वापि	५/३१
मन्त्रं निष्फलमायातु	५/४६
मन्त्रयन्त्रमयि मातः	११/३७
मन्मार्गं हृदि संचिन्त्य	११/१५
मनुष्याणां शरीरे तु	६/१७

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
मनोवाक्चक्षुभिर्हृद्भिः न	५/३२
मन्त्रैर्यन्त्रैस्तथा तन्त्रैः	१४/३६
मन्त्रयन्त्रबलेनैव केनापि	५/२४
मन्त्रयन्त्रान् परित्यज्य	६/२
मन्त्राणां पंचभागं तु	१२/६
मन्त्रेषु प्रणवं प्रोक्ताम्	६/४१
मम कुण्डलिनीं शक्तिं	१३/२८
मम नित्यं शौरशक्तिः	३/१८
मरुद्गणाः रुद्रगणाभि	१०/१३
मर्यादावान् भवेन्नित्यं	३/२४
मयि समर्प्य तत्सर्वं	५/३८
महत्कार्यं महत्दृश्यं	१५/१६
मातरं कर्हिचित् काले	१६/३१
मां विहाय प्राणिगणाः	११/२२
मामेकां सर्वकालेषु	११/२४
माननीयां प्रेमरूपां	१८/११
मायामोहसमाच्छन्ना	१२/१२
मुकुरेण यथा लोकैः	५/२७
मुखेनैकेन प्रणवं	२/४३
मुनयः ! वृत्तमाद्यन्तमुवाच	८/२८
मुनीनां चिन्तनीयाऽहं	११/३३
मुनिमनोहरां दिव्यां	४/८३
मुने ! कुण्डलिनीं शक्ति	१३/३१
मूलप्रकृतिरूपा सा	८/२६
मृगतृष्णाभिलोभेन	६/२८
मृत्युंजये मृत्युर्भीतिः	७/५६
मृदंगक्वणनश्चाहं च	१६/३०
मेघं समालोक्य यथा	१०/१७
मेधाशक्तिवलेनैव बुद्धिं	३/७
य	
यं श्रुत्वेह पुनर्जन्मकृतं	८/२
यः करोति जपध्यानं	१७/११

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
यो मां पश्यति सर्वत्र	१७/१६
यः सदा मनसा वाचा	१२/१६
यो योगी पंचकोषं च	१२/२१
यज्ञादिकार्ये भवनस्य	१०/१०
यज्ञस्थाने क्रुधस्तावन्न	४/७२
यज्ञारम्भे याज्ञिकैस्तु	४/२२
यदाऽऽत्मज्ञानतत्त्वज्ञाः	१४/२६
यदा त्वां चिन्तयिष्यामि	२/२७
यदामतपूजने कर्म	११/३४
यदा समाधिमापन्नाः	१४/२७
यदि त्वं सत्यपाशेन	४/५६
यत्र देवाः परित्यज्य	१/२१
यन्त्रमन्त्रादिमुद्राभिः	६/२६
यमनियमसंस्थिता यासु	७/२७
यस्य एवंविधा बुद्धिः	१४/२०
यस्य न भवति नाशः	१४/३०
यावत् पृथिव्यां सरितः	१०/२२
यावत् सृष्टिस्थितिश्च	१०/२४
याऽष्टसिद्धिपरादेवी	६/१
याः शक्तिप्रभावेण वर्शा	६/२६
याज्ञिकयागरक्षित्री यम	७/४३
या साधुश्चिन्तयेन्नित्य	११/१६
यूयं जगत्पितरश्च	४/५४
य एवं मम सूक्ष्मत्वं	५/३६
ये जुह्वन्ति ध्यायन्ति	६/३८
ये तु क्रूरजनाश्चैव नित्यं	१३/१५
ये विद्यासु परं श्रेष्ठाः	१३/१८
ये सज्जनाः दिवारात्रं	५/१३
ये स्मरन्ति तथाभूतां	३/३६
येऽपि भजन्ति सततं	३/३७
यैर्हृदान्तर्गतप्राणान् सोऽहं	१३/१२
योगज्ञानप्रदां देवीं योगेन्द्र	६/४०

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
योगजपतपादीनि सृज्यन्ते	१४/३७
योगबलेन गायत्रीं यो	६/१५
योगशक्त्यात्मनिष्ठा च	३/१०
योगसिद्धिप्रभावेण	६/१६
योगासने उपेत्वा तु	१४/८
योगेश्वरी अहं ब्राह्मी	१४/२१
योजनात् योजने स्थित्वा	७/३७
योनः शब्दखण्डमेव	१५/२६
यो द्विजः प्रातर्मध्याह्ने	६/१९
योषितामग्रगण्या त्वं	७/३८
र	
रणांगणे रणप्रिया	७/४६
रतिपतेरात्मरूपां	७/५७
रम्भावृक्षाभिनिन्दितौ	२/८
रम्यां राजेश्वरीं दिव्यां	७/४७
रसशक्तिप्रभावेण कवित्वं	३/१५
रक्षांसि देवाः नरकिन्नराः	९/३०
रागद्वेषौ परित्यज्य	१७/१७
राहुग्रस्तेन्दुवत्तस्याः सर्वं	४/६८
रुद्रपुत्रं कार्त्तिकेयं	४/१७
रुद्रभद्रमण्डलादीन्	४/११
रेचयेत् सूर्यमार्गेण पूरयेत्	१४/११
रेणुरूपेण सर्वत्र विद्यमाना	७/२५
रोषादिकं त्वयि नास्ति	७/६७
रौद्रशक्त्या महाशत्रून्	३/२६
ल	
लयांगपूजनादिभिरर्च्चयन्ति	९/३१
लोके तेजस्विनि मातः	२/३२
लौहं यथा चुम्बति	४/४७
व	
वनस्पतयो गिरयः समुद्राः	१/७
वरेण्यं शब्दखण्डं च	१५/१५
वरेण्या ब्रह्मवादिनी	७/५१
वशिष्ठादिऋषीणां च	७/३४
वशीकरोषि स्वशक्त्या	७/२४
वसुमतीमथ श्यामां च	७/६५
वायुर्यमोऽग्निर्व्योमश्च	१८/१६
वायुषु वायुर्नो धृत्वा	६/३७
विगतेर्ष्या वीतरागा	७/२२
विद्याहं च तथा वेदः	१६/२२
विघ्नहन्त्री शक्तिरियं	१३/२७
विघ्नेशं विघ्ननाशाय	४/१५
विपत्नीको यज्ञं कर्त्तुं	४/२७
विभावयेत् स्वमनसि	११/१०
विल्वोपमस्तनाभ्यां च	२/१२
विलोक्य तु देवगणान्	१/१९
विविधसिद्धिमार्गेण गायत्रीं	६/१०
विवेकबुद्धिमाश्रित्य विधाय	१३/७
विश्वशान्तिमहायज्ञं	४/५२
विष्णुं यज्ञपुरुषेण	४/१३
विष्णुनाभ्युत्थितो ब्रह्मा	१६/८
विष्णुमायां तु संसारं	९/३२
विष्णोः पालनशक्तिश्च	११/२६
विहाय मम मायां तु के	२/१९
वृक्षस्य शाखासु भवान्तरेषु	१०/३
वेदप्रवक्त्रीं जननीं श्रुतीना	९/२६
वेदरूपे वेदधात्री	२/४०
वेदेष्वपि पुराणेषु विद्ये	१६/१६
श	
शंकरी सर्वकार्येषु	७/४९
शंखनादं चकारोच्चैः	४/८६
शक्तिं श्रुत्वा च गायत्र्याः	३/३१
शक्तिरियं साधकानां	१३/२२
शक्तिदं तावकं स्तोत्रं यो	१८/१९

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
शक्त्याहं परमात्मानः	१६/७
शक्त्या प्राणान् सुसंयम्य	७/५०
शनैर्वायुः संयमनं	१४/१५
शरणागतसंत्राणे	६/३३
शरीरशोधनार्थाय जलम्	११/१३
शान्तिशक्तिप्रदानेन जनानां	३/१७
शापग्रस्ता तु सा देवी	४/७३
शिवमाचार्यभावेन साष्टांग	४/२१
शिशुवेदं पद्माकारं अष्ट	४/६
शीते जले प्रविश्याग्निं	५/४८
शीतोष्णादीन् परित्यज्य	१७/७
श्रीकण्ठो डम्बरूकं च	४/८७
शुष्काय नित्यं रस	२/२१
श्रुत्वेमां मधुरां वाचं	१७/१८
श्रुत्वा स्तुतिं वेदगर्भा	२/३३
श्रुतिः स्मृतिः करे	३/३४
श्रूयतां भो देवदेव	१३/२
श्रेष्ठत्वं लभते तावत्	५/४४
शृणु देव उमानाथ	१५/१
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामः	१/१५
शृणुत ऋषयः सर्वे	३/३
शृणुत वै प्रवक्ष्यामि	१/२
शृणुताहं वदिष्यामि मन्त्रं	७/४
शृणु देव उमाकान्त	१८/१
शृणु देव प्रवक्ष्यामि	११/७
शृणु देव रमाकान्त	१२/५
शृणु देव शितिग्रीव	१६/६
शृणु शिव प्रवक्ष्यामि	१७/४
शृणुष्व त्वं महायोगिन्	११/२१
शृणुष्व भो जगन्मात	४/५८
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे	११/३
शृण्वन्तु भो ऋषिश्रेष्ठाः	१६/४
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे	१०/२
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे	६/३
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे	२/२
ष	
षड्वैरीन्तु पराजित्य ये	६/३४
षड्रिपूणां प्रवृत्तेश्च यो	६/२८
स	
संसारवह्नौ परितो	१०/१५
संसारे प्रेमरूपाहं प्रेम्णा	११/२८
संसारवारिधौ मग्नाः	१२/१३
संसारशरीरे तावत्	१३/२६
सोऽनर्गलं प्रभाषेत सभासु	६/३१
सोऽमृतं च परंब्रह्म परं	१४/२५
सोऽहं हंसत्वमास्थाय	७/५८
सोऽहं हंसः साधनेन	१३/२४
सकामभावमाश्रित्य ये	१७/१२
सज्जनेभ्याशिषं तस्माद्	६/३४
सजीवजीवनिर्जीवे सर्वघटे	७/७१
स वह्निः प्रलयं सिन्धुं	१/६
सत्यस्य ज्ञानमार्गेषु	५/३५
सत्संगं सत्यकर्माणि	३/३०
सत्यक्षमादयाशान्तिः	७/२१
सत्योऽहं सत्यरूपा च	११/२७
सत्यं यस्य भूषणं च	१३/१४
सद्गृहस्थाः हि ये केचित्	८/१५
सन्तरणार्थं झसानां यथा	११/११
समभावं च ब्रह्मैक्यं यः	१८/३
समस्तहृदमध्यस्था	७/१८
समृद्धचेतनाज्ञानं सर्वात्मने	८/१४
सम्यक्भावेन व्याख्यातु	३/२
सर्वकर्म क्रियाशक्तिं	१४/४१
सर्वकर्मफलान्येव यः	१७/१०

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
सर्वकार्यं परित्यज्य	१८/५
सर्वकार्येषु निर्लिप्तः	५/३३
सर्वजीवगणास्तद्वत्	१२/२८
सर्वदा निर्मलं चित्तं मयि	१८/४
सर्वभूतस्थिते देवि	२/४१
सर्वमन्त्रेष्वाद्यवर्णा	१/१८
सर्वज्ञ ! कथय तावत्	२/१
सर्ववन्द्यां सर्वपूज्यां	२/२४
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं	३/२७
सर्ववेदान्तविद्येऽहं	१६/२१
सर्वशत्रुगणस्तस्य मित्रत्वं	५/४५
सर्वशास्त्रसमुद्भूतं तत्त्वार्थं	१५/२५
सर्वात्मसु स्थिता देवि	७/१
सर्वेषु शास्त्रेषु परं प्रपूज्या	६/३५
सर्वोत्तमद्विजश्रेष्ठाः मम	१७/६
सर्वज्ञानमयी नित्या सर्वत्र	८/११
सर्वज्ञानयुता देवी	८/१
सर्वज्ञानविदां श्रेष्ठ	११/१
सर्वतीर्थस्वरूपां च गायत्री	८/१३
सर्वत्र परिव्याप्ता तु	८/२५
सर्वं सहैव पृथिवी	५/६
सर्वसौख्यप्रदे देवि	१८/१४
सर्वस्वरूपा त्वं देवि	१८/१५
सर्वात्मनामक्षयवासयुक्ता	८/२७
सर्वारम्भान् परित्यज्य	१४/३६
सर्वे देवाश्च ऋषयः	२/१५
समदृष्टिः समोभावः	३/१२
समाधियोगं तमहं ददामि	५/४०
समाधियोगमास्थाय	६/७
समालोक्य देवगणाः	४/४३
सरस्वतीस्वरूपेण	२/३६
सवितुर्वादिनो लोकास्तेज	१५/१३

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
स सर्वसिद्धिमाप्नोति	१८/१०
सहस्रनेत्रामनवद्यरूपा	३/३२
सहस्रलोचने देवि	११/१६
सागरोत्थं यथा फेनं	१४/२३
सा देवी स्वप्नजागृत्या	८/१०
साधुसन्तेषु विज्ञेषु	२/४७
सामवेदार्द्धचन्द्रं च यजुः	४/८
सावित्रीति तु गायष्याः	४/८४
सा शक्तिः क्षयमायातु ध्रुवं	४/६७
सुखदा दुःखतप्तानां	१७/१५
सुखदुःखे च विस्मृत्य	१७/८
सुगन्धितेषु पुष्पेषु भ्रमन्ति	५/१५
सुप्तां कुण्डलिनीं शक्तिं य	१३/५
सुषुप्तिस्थानमासाद्य ज्योतिः	८/५
सुषुम्णामार्गमवरोधयन्तः	१०/१६
सूक्ष्मतान्त्रिकशक्तिश्च	१६/११
सूर्यचन्द्रसुरेन्द्राश्च मार्गणं	५/४
सूर्य रेतः रजो भूमिः	१५/१४
सूर्यस्य तीव्ररश्मिना	२/१८
सूर्ये प्रखरतेजोऽहं चन्द्रे	१६/२८
सूक्ष्मतनुत्वमाधाय तपः	६/१४
सृष्टिसंचालनार्थाय नूनं	३/२१
सृष्टिस्थितिविनाशानि क्वचित्र	२/१७
सोत्फुल्लिताव्रवीद्देवी वरं	२/४५
सोमसुधारसेनात्र च	७/६८
सृष्टिस्थितिकरां देवीं	१८/१७
स्रोतांसि च परित्यज्य न	२/२८
स्तुतिभिः परितुष्टा सा	११/३८
स्तुत्या तुष्टा तु सा देवी	२/४
स्तुत्या तुष्टः स्वयं ब्रह्मा	४/७४
स्तुत्या प्रसन्नतां प्राप्य	१०/२३
स्त्रीपुत्रकन्यकास्तावत्	११/८

श्लोक.	अ./श्लो.सं.
स्त्रीसंगसौख्यं न विचार्य	१०/२०
स्थितप्रज्ञत्वमास्थाय भूतानां	६/६
स्थितिर्हि जडजीवानां	५/२१
स्यकारे त्वं वेदमाता	७/३२
स्वर्गपातालमर्त्यानां	१२/८
स्वतेजसा जगत्सर्वं	७/११
स्वधर्मेऽप्यचलो ये हि	५/१७
स्वप्न जाग्रत् द्विशक्तिश्च	८/७
स्वभवनं परित्यज्य	४/४२
स्वल्पखाद्यं बहुभ्यश्च	६/३२
स्वल्पदण्डप्रदानेन वशं	१४/१३
स्वशक्त्या तु त्रिलोके	७/६६
स्वशब्देन मनःस्थैर्यमुच्यते	१५/११
स्वस्य क्षीरं सन्ततिभ्यो	५/१८
स्वाध्यायेन च सत्संगैः	५/४१
ह	
हंसपृष्ठा समासीनां ये	७/६९
हंसारुढां चतुर्हस्तामक्षमालां	१/१२
हं क्षं ललाटचक्रे तु	७/७०
हकारोऽथ मकारश्च	७/६२
हरन्ति सकलाः पापास्तव	६/३६
हरप्रिया हृदभया ह ज	७/१३
हरते भवत्याः बहु	१०/१८
हिमालयस्थिता देवी तत्र	२/४२
हिमालयात् सागरप्रान्त	१०/२१
हिंसा तु वर्जयन् दूरम्	१७/६
हिंस्रचौरादिकाः दुष्टाः	३/२०
हे केशव ! सत्यवाक्यं	४/५७
हे देवि ! कृपया देहि	२/२५
हे देवि ! तव मन्त्रं च	५/५२
हे देवि ! त्वं प्रसन्ना चेत्	२/४८
हे देवि ! व्याजवचनं न	४/५५
हे श्यामलांगि ! रिपुवंश	३/३३
हे हंसनाथ ! लोकेश	४/६६
हृदये मेघचत्वारो स्थीयन्ते	२/११
हृन्मध्ये योगमार्गेण मन्त्रः	५/२३
ह्रीं बीजं समन्त्रकन्तु त्वा	७/३५
क्ष	
क्षणभंगुरसंसारजन्म	१२/१५
क्षणस्थायिनि संसारे	३/३८
क्षरे सुधास्यन्दिमुखारविन्दे	६/३७

※

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ
(हिन्दी टीका सहित)

श्री एस.एन. खण्डेलवाल द्वारा अनुदित

- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4 भाग सम्पूर्ण
- श्रीसाम्बपुराण

श्री श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा [illegible] एवं अनुदित

- श्रीविद्या-साधना (1 [illegible] सम्पूर्ण)
- भारतीय शक्ति-साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं ब [illegible] -साधना
- काश्मीर शैवदर्शन ए [illegible] स्त्र
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- स्पन्दकारिका

श्री सुधाकर मालवीय द्वारा अनुदित

- रुद्रयामल (1-2 भाग)
- शारदातिलक (1-2 भाग)
- मन्त्रमहोदधि
- सौन्दर्यलहरी

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित

- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)

- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त)(1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)

श्री राधेश्याम चतुर्वेदी द्वारा अनुदित

- तन्त्रालोक (1-5 भाग)
- स्वच्छन्दतन्त्र -(1-2 भाग)
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकालसंहिता : (गुह्यकाली-खण्ड)
- (1-5 भाग)

श्री जगदीशचन्द्र [illegible] द्वारा अनुदित

- त्रिपुरारहस्य [illegible] ह एवं माहात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरार्णव [illegible]

श्री परमहंस मि [illegible] अनुदित

- तन्त्रसार
- कुलार्णव [illegible]
- नित्योत्सव [illegible] विमर्शकसद्ग्रन्थ

श्री रामप्रिय पाण्डेय [illegible] लिखित

- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या

अन्य पुस्तकें

- विज्ञानभैरव : बापूलाल आँजना
- सिद्धसिद्धान्तपद्धति : द्वारकादास शास्त्री
- श्रीकृष्ण की तान्त्रिक पूजा (तान्त्रिक अनुष्ठान-परक ग्रन्थ) : विष्णु के. आचार्य
- शङ्कराचार्य तान्त्रिकसाधना : रामचन्द्रपुरी

वितरक
चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
4697/2, 21-ए, अंसारी रोड़,
दरियागंज नई दिल्ली - 110002
फोन न. 011-23286537, 32996391

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के - 37/117 गोपाल मंदिर लेन
वाराणसी-221001
फोन न. 0542-2335263, 2335264

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

(हिन्दी टीका सहित)

श्री एस.एन. खण्डेलवाल द्वारा अनुदित

- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4 भाग सम्पूर्ण
- श्रीसाम्बपुराण

श्री श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा लि[illegible] एवं अनुदित

- श्रीविद्या-साधना (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- भारतीय शक्ति-साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना
- काश्मीर शैवदर्शन एवं [illegible]
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- स्पन्दकारिका

श्री सुधाकर मालवीय द्वारा अनुदित

- रुद्रयामल (1-2 भाग)
- शारदातिलक (1-2 भाग)
- मन्त्रमहोदधि
- सौन्दर्यलहरी

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित

- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)

- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त)(1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)

श्री राधेश्याम चतुर्वेदी द्वारा अनुदित

- तन्त्रालोक (1-5 भाग)
- स्वच्छन्दतन्त्र (1-2 भाग)
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकालसंहिता : (गुह्यकाली-खण्ड)
- (1-5 भाग)

श्री जगदीश[illegible]मिश्र द्वारा अनुदित

- त्रिपुरारह[illegible]नखण्ड एवं माहात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरार्णव[illegible]

श्री परमहंस मि[illegible] अनुदित

- तन्त्रसार (1-2 भाग)
- कुलार्णवतन्त्र
- नित्योत्सव : [illegible]द्याविमर्शकसद्ग्रन्थ

श्री रामप्रिय पाण्डे[illegible] लिखित

- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या

अन्य पुस्तकें

- विज्ञानभैरव : बापूलाल आँजना
- सिद्धसिद्धान्तपद्धति : द्वारकादास शास्त्री
- श्रीकृष्ण की तान्त्रिक पूजा (तान्त्रिक अनुष्ठान-परक ग्रन्थ) : विष्णु के. आचार्य
- शङ्कराचार्य तान्त्रिकसाधना : रामचन्द्रपुरी

वितरक
चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
4697/2, 21-ए, अंसारी रोड़,
दरियागंज नई दिल्ली - 110002
फोन न. 011-23286537, 32996391

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के - 37/117 गोपाल मंदिर लेन
वाराणसी-221001
फोन न. 0542-2335263, 2335264